॥ श्री ॥

परशुराम वंश दर्शन

लेखक—

पं० गणेशराम गौड़

॥ ॐ ॥

❀ श्री परशुधराय नमः ❀

श्री परशुराम वंश दर्शन

अर्थात्

श्रीमद् भृगुकुलोत्पन्न परशुराम वंशीय आदि गौड़ावतंश

ग्रन्थकर्त्ता—

श्रीमान् पं० ईश्वरदासात्मज गणेशराम शर्मा बीकानेर निवासी ने वेदादिसच्छास्त्रों व पुराणों और आर्ष ग्रन्थों के प्रत्यक्ष प्रमाणों से बनाया व स्वजातीय बन्धुओं के हितार्थ प्रकाशित किया।

प्रथम बार १०००] संवत् २००४ [मूल्य १)

नोट— ग्रन्थकर्त्ता को सर्वाधिकार सुरक्षित है।

- धन्यवाद -

आज से प्रायः ३०-३२ वर्ष पहले जब मैंने इस जातीय ग्रन्थ "श्री परशुराम वंश दर्शन" के लिखने का सं० १९७३ में निश्चय किया तो अजमेर निवासी विद्वद्वर्य पं० ब्रह्मदत्तजी ने मेरे साहस को द्विगुणित करने के लिये डांगावस (मेड़ता) से जो जातीय सन्देश निकाल कर जाति में जो लहर पैदा की थी उसने मेरे इस ग्रन्थ के कलेवर को और भी बढ़ा दिया। इसके लिये उन्हें हार्दिक धन्यवाद देता हूं। समय समय पर मेरे ज्येष्ठ पुत्र गंगादास ने ढाका प्रभृति नगरों में जातीय ज्ञान प्राप्त कर जो मुझे साहस दिया तथा मेरे कनिष्ठ पुत्र शिवकृष्ण ने लेखन कार्य में जो सहायता दी और मेरे द्वितीय पुत्र प्रयागदत्त ने जो जागृति पैदा की वह भूली नहीं जा सकती। इसके अतिरिक्त नवीन पद्धति पर मेरे दोहित्र मोहनलाल ने इसे लाने का जो प्रयत्न किया है वह स्मरणीय है।

अन्य जातीय सज्जनों ने भी समय समय पर मुझे इस ग्रन्थ को समाप्त करने का जो साहस प्रदान किया है उसके लिये उन्हें करबद्ध धन्यवाद है।

— विषय सूची —

संख्या	विषय	पृष्ठ संख्या
१	भूमिका	
२	धन्यवाद	
	प्रथम खण्ड—	
१	मंगलाचरण	
२	सृष्ट्युत्पत्ति वर्णन	२
	द्वितीय खण्ड—	
३	ब्राह्मणोत्पत्ति	८
४	ब्राह्मण शब्द विवेचन	९
५	ब्राह्मण जाति का उत्पत्ति स्थान ...	९
६	ब्राह्मणत्व वर्णनम्	११
७	ब्राह्मणों के दश भेद	१३
८	ब्राह्मण प्रभाव वर्णनम् ...	१४
९	ब्राह्मण धर्म वर्णनम्	१५
१०	ब्राह्मण जीविका	१६
११	वर्ण लक्षणम्	१७
	तृतीय खण्ड—	
१२	[illegible]	

संख्या	विषय	पृष्ठ संख्या
२१	देशानाइ	
	चतुर्थ खण्ड—	
२४	गशोत्पत्ति	२७
२५	भृगु शब्दार्थ	३०
२६	भृगु का महत्त्व	३१
२७	भृगोत्पत्ति	३४
२८	ऋचीक सत्यवती का आख्यान ...	३८
१९	जमदग्नि का जन्म	४२
२०	जमदग्नि का शब्दार्थ	४३
२१	ऋचीक और सत्यवती का आख्यान	४५
२२	परशुराम का जन्म	४७
२३	परशुराम का शब्दार्थ	४८
२४	परशुराम का महत्त्व व प्रभाव ...	५१
	पञ्चम खण्ड—	
२५	पितृवंश व मातृवंश	५३
२६	परशुराम का विवाह व तत्सम्बन्धी शंका निवृत्ति	५५
२७	परशुराम का विशाल मन्दिर ...	६१
	षष्ठम् खण्ड—	
२८	गोत्र निर्णय	६?

२९	षोडस संस्कार	८
३०	नित्य नैमित्यिक कर्म	९
३१	षोडश पूजा	१०
३२	ईश विनय	१०
३३	प्रशंशा पत्रम्	१०
३४	धन्यवाद पत्रत्	१०
३५	ग्रन्थकर्ता की वंशावली ...	११

— परशुराम वंश दर्शन —

—() शुद्धाशुद्ध पत्र ()—

सं०	पृष्ठ	पंक्ति	मुद्रित	उचित
१	अ	४	तद्दर्थो	तद्दर्थं
२	३	१२	च्चुके	चुके
३	३	१४	व्यहारत्	व्याहरत
४	५	१४	स्तमाद	स्तस्माद
५	१४	४	प्रतिष्ठयाम्	प्रतिष्ठायाम
६	१४	१२	वृदद्धारते	वृहद्भारते
७	१५	७	भवाज्ज्यैष्ठ्मादं	भवाज्यैष्ठ्याद
८	१६	६	श्वेतकल्प	श्वेतवाराहकल्प
९	२०	२	कुरुद्देत्रं	कुरुक्षेत्रं
१०	२०	४	कुरुज्ञेत्रं	कुरुक्षेत्रं
११	२२	१२	ब्राह्मणस्यप्रकीर्तिता	ब्राह्मणस्यप्रजातिरेका प्रकीर्तिता
१२	२२	१४	भेयेन	[illegible]देन
१३		६	स्वांलोचरित्रं	[illegible]लोचरित्रं

१४	२८	१४	ह्यां	ह्रदां
१५	३१	१२	समुत्पक्ति	समुत्पत्ति
१६	३२	१०	वद्धस्यताऽयत्	वद्धस्यताड्यत्
१७	३५	२	ऋचीकतस्त्य	ऋचीकस्तस्य
१८	३६	६	आसीन्नघन्यजः	आसीज्जघन्यजः
१९	५५	१४	सावर्णोरिहतान	सावर्णोरिहतान
२०	५६	१	भविव्य	भविस्या
२१	५६	१२	सर्वोष्येव	सर्वोस्वेव

वैद्य पं. ईश्वरदासात्मज गणेशराम गौड़

॥ ओ३म् ॥

-- भूमिका —

काहं कोऽहं कुलं किंमे सम्बन्धः कीदृशोमम ।
स्वस्व धर्मो न लुप्येत तर्थ्रोवं चिन्तयेद बुधः ॥

॥ सह्याद्रि खण्डे ॥

अर्थ— मैं कौन किस जाति का हूँ, मेरा कुल क्या है, किससे मेरा सम्बन्ध है। अपने अपने धर्म लुप्त न होवे ऐसा विचार पण्डित करें।

शिक्षा वर्णनम्

आत्मनो ज्ञाति वृत्तान्तयो न जानाति स पुमान् ।
ज्ञाति पंक्त्या बहिष्कार्यो मूढ़ो भवति गो खरः ॥ ४ ॥
स्वज्ञाति पूर्व जानायो वृतं जानाति पण्डितः ।
गोत्र प्रवर शाखा दीन्पूजनीय सदा नरैः ॥ ५ ॥

॥ पद्मपुराणे ॥

टीका— अपनी जाति के वृत्तान्त को जो नहीं जानता

है उस मनुष्य को पंक्ति से च्युत कर देना चाहिये। क्योंकि मूर्ख जन गोखर (रोझ) के समान होता है ॥ ४ ॥ अपनी जाति तथा पूर्वजों के वृत्तान्त को और गोत्र, प्रवर, शाखा, शूत्रादि को जो जानता है वह पण्डित है और मनुष्यों कर के सदा पूजने योग्य है ॥ ५ ॥

तस्यैव सफलं जन्म जाति शुद्धिं करोति यः।
जन्म मृत्युश्च संसारे कस्य वा नैव जायते ॥

॥ गौड़स्मृतौ ॥

टीका— जो जाति की शुद्धि को (उन्नति को) करता है उसी का जन्म सफल है और जन्म मरण संसार में किसका नहीं होता है किन्तु जन्म मरण तो सबका सदा ही होता रहता है यातें अपनी जाति की शुद्धि तथा उन्नति अवश्य करें।

यह विषय अविचल है और विवाद रहित है कि परमात्मा के बनाये नियम ऐसे ही थे, ऐसे ही हैं और ऐसे ही रहेंगे। उनमें किसी काल, देश अथवा व्यक्ति विशेष के प्रभाव से कदापि हेर फेर नहीं हो सकता। कारण इसका यह है कि इन नियमों का बनाने वाला अनन्त ज्ञानयुक्त था फिर उसके नियम चल कैसे हो सकते हैं, कभी ऐसा नहीं हुआ कि कोई ईश्वरीय नियम अपनी पूर्वावस्था को त्याग करके

किसी नवीन अवस्था में परिणत हुआ हो। कभी ऐसा नहीं होता कि कोई ईश्वरीय नियम किसी एक देश या एक जाति में एक प्रकार से हो और अन्य देश व जाति में वह अन्य प्रकार से हो और जिस परमात्मा के नियम इतने दृढ़ हैं उस ही का एक नियम यह भी है कि जो मनुष्य सत्कर्म करेगा वह श्रेष्ठ और जो जो नीच कर्म करे वह नीच होता है। इसी नियम के अनुसार संसार में सब व्यवहार अब भी प्रचलित है। इस विषय को बढ़ाने की जरूरत नहीं जान पड़ती। इससे हमारा केवल इतना प्रयोजन है कि जिस प्रकार परमात्मा के बनाये सब नियम अविचल हैं वैसे ही गुण कर्म और स्वभावानुसार वर्ण व्यवस्था मानने का नियन भी परम स्थिर या अविचल है। इस विषय पर शतशः पुस्तक और लेख लिखे जा चुके हैं।

हम आज जिस विषय पर लेखनी को कष्ट देने के लिये उपस्थित हुए हैं वह यद्यपि हमारे लिखने योग्य न था क्योंकि जिस जाति के पूर्व पुरुष को स्वयं भगवान् श्री कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास महर्षि (जो अष्टादश पुराणों के कर्ता माने जाते हैं) एक स्थान पर ही नहीं वरन् सब पुराण और भारतवर्ष के सर्वोच्च और सर्वमान्य इतिहास महाभारत में मुक्त कण्ठ से ब्राह्मण ही नहीं वरन् ब्रह्मऋषि कह कर उनको पुकार रहे हैं फिर किसका साहस है कि उस जाति के विषय में चूँ भी कर

सके ? किन्तु कहीं कहीं मनुष्य को ऐसे कठिन स्थल आ पड़ते हैं कि मनुष्य को अपने ही दोष में स्वयं फँस जाना पड़ता है और उस फँस जाने से उसके ऊपर एक प्रकार का ऐसा आवरण आ जाता है कि जिस से आच्छादित होने के कारण या तो अपनी प्राकृत अवस्था को नितान्त भूल ही जाता है या साहस करके यह भी कहना अत्युक्ति ग्रस्त नहीं हो सकता कि वह अपनी प्राकृत अवस्था से पतित ही हो जाता है।

किन्तु इतना तो अवश्य ही हुआ है कि पूर्वोक्त आवरण आ जाने के कारण यह अपनी प्राकृत अवस्था को भूल से गये हैं। बस उन्हें उनकी पूर्वावस्था का बोध करा देना मात्र ही हमारे इस क्षुद्र लेख का मुख्योद्देश्य है।

ॐ

— श्री परशुराम वंश-दर्शन —

अर्थात्

श्री मद्भृगुकुलोत्पन्न

परशुरामवंशीय आदिगौड़ावतंश

— प्रथम खण्ड —

दोहा — श्री नारायण कृपा करी, आज्ञा दई गणेश।
'वंश-रचना' ग्रन्थ में, काटहु नित्य कलेश॥

॥ मंगलाचरण ॥

ॐ यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते तया मामद्य मेधयाग्ने मेधा विनं कुरु स्वाहा। यजु० अ० ३२ मं १४

भावार्थ— हे अग्ने ! प्रकाशरूप ईश्वर आपकी पूर्ण अनुग्रह से अखिल-ब्राह्मणवंश प्रकाशिनी बुद्धि की आराधना हमारे पूर्वाचार्य भृगु महर्षि ने की तदनुसार हमको भी आप कीजिये।

देवानां भद्रा सुमति ऋजूयतां देवानां राति रभिनो निवर्तताम्।
देवानां सख्य मुपसेदि मावयं देवान आयुः प्रतिरन्तु जीवसे॥

भावार्थ— कल्याण करने वाली देवताओं की सुमति हमारे लिये सरल हो, देवताओं का दान हमको सब ओर से प्राप्त हो, देवताओं के साथ हम मित्रता करें, और देवतागण हमारे जीवन के लिये सर्वदा आयु प्रदान करें।

॥ परशुराम वंश - दर्शनम् ॥

दोहा— श्री नारायण कृपा करि, प्रेरित भये लोकेश।
ग्रन्थ करन लाग्यो तबे, जामें सत्य प्रवेश॥

—: सृष्ट्युत्पत्ति वर्णन :—

यह सम्पूर्ण जगत किस प्रकार उत्पन्न हुआ, प्रारम्भ में किस अवस्था में था, यह प्रतिपादन करना अत्यन्त दुस्तर ही नहीं अपितु दुर्घट कार्य है। वेद में लिखा है:—

को ददर्श प्रथमं जायमानमस्थन्वन्तं यदनस्था बिभर्ति।
भूम्या असुरसृगात्मा क्वस्वित्को विद्वांस मुपगात् प्रष्टुमेतत्।

भावार्थ— सृष्टि जब कि उत्पन्न हुई उस प्रथम दिन को किसने देखा है। ऐसे दुर्घट कार्य में किसे हाथ लगाने का साहस होगा। परन्तु वेद में ही जो इसके सम्बन्ध में कुछ थोड़ा बहुत लिखा है, वह यथातथ्य नीचे उद्धृत किया जाता है। वेद के बहुत से सूक्तों का देवता 'भाववृत्तम्' लिखा है, जिसका अर्थ

ही पुरावृत्त या इतिहास है, ऐसे ही सूक्तों में से ऋग्वेद के एक सूक्त के कुछ मन्त्र नीचे लिखे जाते हैं:—

नास दासीन्नो सदसीत्तदानीं नासीद्रजो नोव्योमापरोयत्।
किमावरीवः कुहकस्य शर्म्मन्नम्भः किमासीद्गहनं गभीरम्॥

भावार्थ— तब महाप्रलय के पश्चात् न सत् था न असत्, न रज था न आकाश और न अन्तरिक्ष था। तब क्या था?

न मृत्युरासीद मृतं न तर्हि न रात्र्याऽन्ह आसीत्प्रकेतः।
आनीद वातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न परः किञ्चनास॥

भावार्थ— तब न रात थी, न दिन था, न मौत थी, न अमृत था। तब प्रवृत्ति के साथ ही एक ईश्वर था उससे भिन्न और कुछ न था।

आत्मैवेद मग्र आसीत्पुरुष विधः। सोनुवीक्ष्य नान्यदात्मनो ऽपश्यत्।
सोऽहमस्मीत्यग्रे व्यहारत् ततः अहं नामा अभवत॥
शतपथ १४।१।४।

भावार्थ— पहले एक पुरुष नाम वाला आत्मा था, उसने अपने को देख कर अपने से भिन्न और कुछ न देखा, उसने अहं कहा इसी से उसका 'अहं' नाम हुआ। 'एकोहं बहुस्यामिति श्रुते'

फिर उस आत्मा को अकेले में आनन्द नहीं आया तब ऐसी इच्छा उत्पन्न हुई कि मैं अनेक हो जाऊँ।

ॐ सहस्र शीर्षा पुरुषः सहस्राक्ष सहस्रपात्। सभूमि ꣳ सर्वतस्पृ-त्वात्यतिष्ठद्दशांगुलम्। यजु० अ० ३१ मं १ ॥

भावार्थ— अखण्ड अविनाशी इन्द्रियों से परे चैतन्य परमात्मा जिसका यह ब्रह्माण्ड शरीर है, समस्त प्राणी मात्र के शिर हैं वे सब उस परमेश्वर के शिर हैं यानि असंख्य शिरों से युक्त हैं। इसी भाव से हजारों ही नेत्र व चरण हैं। कहां तक कहें उसी महापुरुष ने इस ब्रह्माण्ड रूप विराट को धारण कर स्वयं दशांगुल प्रमाण से चराचर में स्थित हुआ है।

ॐ ततो विराडजायत ञ्विराजोऽअधि पुरुषः। सजातोऽ अत्यरिच्य तपश्चाद् भूमि मथो पुरः॥ यजु० अ० ३१ मं ५

भावार्थ— उक्त आदि पुरुष परमेश्वर से यह ब्रह्माण्ड देह जिसमें अनेक प्रकार के प्राणी निवास करते हैं प्रथम यही उत्पन्न हुआ। इससे अपनी ब्रह्माण्ड देह के ऊपर स्वदेह को अधिकरण करके उस देह का अभिमानी आप एक ही पुरुष रमा सहित उत्पन्न हुआ। सम्पूर्ण शरीर में जानने योग्य परमात्मा अपनी पराऽपरा इन दोनों माया से विराट ब्रह्माण्ड की रचना करके उसमें आप जीवात्मा रूप से प्रवेश होकर सर्वेश्वर हुआ अर्थात् विष्णु हुआ। पश्चाद्भूम्यादि तत्वों की रचना की।

ॐ नाभ्या आसीदन्तरिक्ष ꣳ शीर्ष्णो द्यो समवर्त्तत।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रा तथा लोकाँऽअकल्पयन्॥
यजु० अ० ३१ मं १३॥

भावार्थ— उस परमेश्वर की नाभि से आकाश, मस्तक से स्वर्ग, चरणों से पृथ्वी और श्रोत्रों से सब दिशायें हुईं। ऐसे ही चतुर्दश लोकों की रचना समझनी चाहिये।

ॐ चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्योऽजायत।
श्रोत्रा द्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्नि रजायत॥
यजु० अ० ३१ मं १२॥

भावार्थ— उसी परमात्मा के मन से चन्द्रमा, नेत्रों से सूर्य, श्रोत्र से वायु तथा प्राण और मुख से अग्नि आदि सब तत्व प्रकट हुए।

ॐ तस्माद्यज्ञात्सर्व हुत ऋचः सामानिजज्ञिरे।
छन्दा ꣳ सि जज्ञिरे तस्माद्यजु स्तमाद जायत॥
यजु० अ० ३१ मं ७॥

भावार्थ— उन्हीं यज्ञस्वरूप विष्णु से ऋग्, साम दो वेद उत्पन्न हुए उनसे ही छन्द अर्थात् अथर्वण हुआ और उनसे ही यज्ञात्मक यजुर्वेद हुआ। यहाँ विष्णु का नाम यज्ञ है। यथा, "यज्ञोवै विष्णुरीति श्रुते।"

ब्राह्मणोऽस्य मुख मासीद्बाहू राजन्यः कृत ।
उरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्या शूद्रोऽजायत ॥
यजु० अ० ३१ मं ११ ॥

भावार्थ— उस परब्रह्म के मुख से ब्राह्मण उत्पन्न हुए, क्षत्रिय भुजाओं से, वैश्य जंघाओं से और शूद्र पैरों से। यही महामुनि श्री प्रशस्तपाद ने लिखा है:—

" एवं समुत्पन्नेषु चतुर्षु महाभूतेषु महेश्वरस्याभिध्यान मात्रा तेजसेऽभ्योऽणुभ्यः पार्थिवाणु सहितेभ्यो महदणुमारभ्यते । तस्मिश्चतुर्वदन कमलं सर्वलोक पितामहं ब्रह्माणं सकल भुवन मुत्पाद्य प्रजा सर्गे नियुङ्क्ते स च महेश्वरेण नियुक्तो ब्रह्माऽति शय ज्ञान वैराग्यैश्वर्य सम्पन्नाः सर्व प्राणिनां कर्म विपाकं विदित्वा कर्मानुरूप ज्ञान भोगायुषः सुतान् प्रजापतीन् मान सान् मनून् देवर्षि पितृ गणान् मुख बाहू रूपादतश्चतुरो वर्ण नन्यानि चोच्चाव चानिभूतानि सृष्ट्वा आशयानु रूपैर्धर्म ज्ञान वैराग्यैश्वर्यैः संयोजयतीति ।"

भावार्थ— इस प्रकार जब चारों महाभूत उत्पन्न हो चुकते हैं, तब महेश्वर के ध्यान मात्र से तेज पार्थिव अणुओं से

अणु उत्पन्न होता है। उस अणु में से चार मुख वाले सब लोकों के पितामह ब्रह्माजी को उत्पन्न करते हैं। ये प्रजा की रचना करने में लगते हैं। ये ब्रह्माजी ऐश्वर्य व ज्ञान से युक्त, सब प्राणियों के कर्मफल को जान कर कर्म रूप ज्ञान भोग वाले प्रजापति, मनु, देव, ऋषि, पितृगण को तथा मुँह, बाहु, जंघा और पैर से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णों को यथाक्रम और ऊँचे नीचे जीवों को उत्पन्न करके आशय के अनुरूप सब धर्म, विज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य में लगाते हैं।

यह सृष्टि जैसे उत्पन्न हुई, जहाँ से हुई, जैसे इसको धारण किया, उसको तत्वतः वही अध्यक्ष परमात्मा जान सकता है।

बस, जो कुछ ऊपर लिखा है, सत्य वही है 'किं तत्वतः' सृष्टि की उत्पत्ति कैसे हुई ? यह ज्ञान अत्यन्त दुर्घट है। इस विषय को भली प्रकार समझने के लिये मनुस्मृति, महाभारत, मत्स्य, श्रीमद्भागवत्, अग्नि पुराणादि अन्य आर्ष ग्रन्थों में भिन्न भिन्न प्रकार से प्रतिपादित है, पाठक वहीं देखें।

❀ इति प्रथम खण्डे ❀

❀ ॐ ❀

— द्वितीय खण्ड —

ब्राह्मणोत्पत्ति

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहूराजन्यः कृतः । ऊरूतदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोऽजायत ॥

इस वेद मन्त्र में ब्राह्मणों का मुख से उत्पन्न होना बतलाया गया है। मुख शब्द के दो अर्थ होते हैं यथा 'मुखमास्ये प्रधाने च' एक तो मुँह और दूसरा प्रधान।

भावार्थ— विराट् ईश्वर का ब्राह्मण मुख हुआ, बाहू क्षत्रिय, वैश्य जंघा और शूद्र चरण हुए। अर्थात् ईश्वर ने इस प्रकार वर्ण व्यवस्था की कि ब्राह्मण सत्य भाषणादि मुख के गुण और विद्या आदि से माना जाय तथा जिस प्रकार समस्त शरीर में मुख प्रधान है वैसे ही जगत में ब्राह्मण प्रधान है। 'मुखमास्ये प्रधाने च' मुख शब्द का अर्थ 'मुँह' और 'प्रधान' दोनों हैं। ऐसे ही क्षत्रियादि में भी जानो।

ब्राह्मण शब्द विवचन—

'ब्राह्मणोऽजातौ' पा० ६।४।१७१। इस सूत्र से अपत्यार्थ में ब्राह्मण शब्द सिद्ध होता है। 'ब्रह्मणोऽपत्यं ब्राह्मणः' अर्थात् जो ब्रह्मा की सन्तान में से हो वह ब्राह्मण कहाता है। अथच 'ब्रह्म वेदस्तमधीते स ब्राह्मणः' अर्थात् जो वेद को साँगोपाँग पढ़ता है वह ब्राह्मण कहाता है। इसके पर्य्यायवाची शब्द भिन्न भिन्न कोषों से नीचे उद्धृत किये जाते हैं।

द्विजाति, अग्रजन्मा, भूदेव, भाडव, विप्र, ब्राह्मण इत्यमरे।

द्विज, सूत्रकण्ठ, ज्येष्ठवर्ण, अग्रजातक, द्विजन्मा, वक्त्रज, मैत्र, वेदवास, नय, गुरु: इति शब्दरत्नावल्याम्।

ब्रह्मा, षट्कर्मा, द्विजोत्तम: इति राजनिर्घण्टे।

द्वीप भेद से ब्राह्मणों के नाम इस प्रकार हैं:—

सप्तद्वीपे तस्य संज्ञा हंसः। शाल्मलद्वीपे श्रुतिधरः। कुशद्वीपे कुशलः। क्रौञ्चद्वीपे गुरुः। शाकद्वीपे ऋतव्रतः। पुष्कर द्वीपे सर्वे एकवर्णाः। जम्बूद्वीपे ब्राह्मणः।

ब्राह्मण जाति का उत्पत्ति स्थान—

भारतवर्ष का दूसरा नाम आर्यावर्त है। आर्य शब्द

का प्रयोग वेद में बहुत जगह आया है। 'उत शूद्रे उत आर्ये' 'विजानीह्यार्यान् ये च दस्यवो' इत्यादि। यास्क ने भी 'आर्यः ईश्वर पुत्रः' लिखा है। 'आ' सब तरफ 'वर्त' वर्तन्ते इत्यार्यावर्तः। जहाँ चारों तरफ आर्य बसते थे वह आर्यावर्त कहलाया।

यह आर्यावर्त पहिले हिमालय के दक्षिण भाग में सुवास्तु प्रदेश में था जैसा कि ऋग्वेद में लिखा है— सुवास्त्वा अधि तुग्वनि।८।२०।३६। और यास्क मुनि ने लिखा है— सुवास्तु नाम नदी।४।२।७। पाणिनि ने भी सुवास्त्वादिभ्योऽण्।४।२।७७। लिखा है। यह 'सुवास्तु' आजकल 'स्वात्' नाम से प्रसिद्ध है।

आर्यावर्त का अर्थ ब्राह्मणों-क्षत्रियों की जन्म-भूमि है। वैश्य यद्यपि इसमें नहीं आये क्योंकि वैश्यों में 'अर्यः स्वामी वैश्ययो' इस पाणिनि के सूत्रानुसार वैश्य को 'अर्य' कहते हैं। परन्तु गौणवृत्या आर्यावर्त शब्दान्तर्गत चारों वर्ण आर्य कहाते हैं।

इसी आर्यावर्त देश के अन्तर्गत ब्रह्मावर्त देश है। 'ब्रह्मवै ब्राह्मणः' इस वाक्यानुसार ब्राह्मणों का निवासस्थान व जन्मभूमि प्रारम्भ में अवश्य ब्रह्मावर्त ही थी। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। यही अमरकोष में लिखा है:— आर्यावर्तः पुण्यभूमिर्मध्य विन्ध्यहिमालयोः।२।१।८। अतः स्पष्ट सिद्ध है मध्य का देश आर्यावर्त ही था।

ब्राह्मणत्व वर्णनम्—

ब्रह्मोपनिषदि— पूर्वस्वकृत पुण्येन जीवो ब्राह्मणवंशोद्भवो ब्राह्मण जातिमनिमात्सर्यादि दोष शून्यो धार्मिकः सुमतिर्ब्राह्मण तनूजो ब्राह्मणः स्यात्।

भावार्थ— अपने पूर्व पुण्य से जीव ब्राह्मण वंश में उत्पन्न मानमात्सर्यादि दोष रहित शुद्ध सात्त्विक बुद्धि वाला ब्राह्मण का पुत्र ही ब्राह्मण होता है। इसलिये गुण-कर्म युक्त जाति ब्राह्मण ही ब्राह्मण कहाता है, अन्य नहीं।

महाभारते— ब्राह्मण्यां ब्राह्मणाज्जातो ब्राह्मणः। स्यान्न संशयः।

भावार्थ— ब्राह्मण से ब्राह्मणी में हुआ ब्राह्मण ही होता है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं।

भूतानां ब्रह्मा प्रथमोऽथ जज्ञे तेनार्हति ब्रह्मणा स्पर्धितुं कः
।२१॥ अथर्व० १९।२२॥

भावार्थ— सब भूतों में ब्राह्मण प्रथम उत्पन्न हुआ। इससे कौन स्पर्धा कर सकता है। जिस जीव को ईश्वर चाहता

है उसी को ब्राह्मण योनि में जन्म देता है।

अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः। यं कामये तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ॥५॥

ऋग्० मं० १०।१२५।५॥

भावार्थ—ईश्वर उपदेश देते हैं कि मैं जिसको चाहूँ उसी को ब्राह्मण, ऋषि और विद्वान करता हूं। इस से जीव का विभिन्न जातियों में भ्रमण स्पष्ट सिद्ध होता है अर्थात् चौरासी लक्ष योनियों में भ्रमण करा कर, और न करा कर भी ईश्वर ब्राह्मण कुल में उत्पन्न करता है। वास्तव में देखा जाय तो ब्राह्मण शब्द का प्रयोग जातिपरक और श्रुतियुक्त में है परन्तु गौणवृत्त्या यदि तप और श्रुति न भी हो तो भी ब्राह्मण ही है। जैसा कि महाभाष्य में लिखा है:—

तपः श्रुतं च योनिश्च एतद् ब्राह्मण कारणम्।
तपः श्रुताभ्यां यो हीनो जाति ब्राह्मण एव सः॥

महाभाष्य ५।१।११५॥ २।२।६॥

भावार्थ—तप, वेद विद्या और योनि ये तीन ब्राह्मण के कारण हैं। जो तप, वेद विद्या से हीन है, वह जाति ब्राह्मण ही है।

ब्राह्मणों के दश भेद—

ब्राह्मणों के दश नाम (पञ्चगौड़ व पञ्चद्राविड़) करने का और भी कारण है:—

ब्राह्मणो जज्ञे प्रथमो दशशीर्षो दशास्य। स सोमं प्रथमं पपौ स चकारा रसं विषम् ॥ अथर्व० ॥

अर्थात् दश सिर वाला और दश मुख वाला ब्राह्मण प्रथम उत्पन्न हुआ। उसने प्रथम सोम पिया और उसने विष को भी नीरस कर दिया। दशशीर्ष विशेषण से दश नाम पड़े। दश मुख विशेषण के दश गोत्र ये हैं:— १. जमदग्नि २. भरद्वाज ३. विश्वामित्र ४. गोतम ५. अत्रि ६. वशिष्ठ ७. भृगु ८. अंगिरा ९. अगस्त्य १०. कश्यप यह प्रसिद्ध किये गये। यह पंचगौड़ और पंचद्राविड़ ब्राह्मणों की दो संज्ञायें हुई 'पंचजना मम होत्रं जुषध्वम्' इस वेद मन्त्र के स्वरस से की गई ऐसा ही प्रतीत होता है। अर्थात् ब्राह्मणों में उपजाति की कल्पना देश भेद से हुई है। यही मीमांसादर्शन में, 'आख्या देशसंयोगात्' इस सूत्र में लिखा है कि देश के संयोग से 'आख्या' होती है।

'ऋषयो मंत्र द्रष्टारः ऋषयो गोत्र प्रवर्तकाः' जिन्होंने मंत्र को देखा है वे ही ऋषि हुए हैं तथा गोत्र के प्रवर्तक भी हुए हैं।

ब्रह्म जानाति ब्राह्मणो वा। इति ब्राह्मण शब्द सिद्धम्। यानि ब्रह्म (वेद) के वाच्य, लक्ष्य, व्यंग्य, और तात्पर्य इन चार अर्थों को जानने वाला ब्राह्मण कहाता है।

आस्पद प्रतिष्ठायाम् पा० ४। १। १४६। इस पाणिनि सूत्र आस्पदानुसार प्रतिष्ठा वाचक है। जैसे मिश्र, द्विवेदी, त्रिवेदी, श्रोत्रिय इत्यादि।

अपत्यं पौत्र प्रभृति गौत्रम् पा० ४। १। १६२। यानि जो वंश जिस ऋषि ने चलाया हो वही गोत्र है।

प्रवरंच गोत्र प्रवर्तकस्य मुनेर्व्यावर्तक मुनिगण। अर्थात् गोत्र प्रवर्तक मुनि के व्यावर्तक ऋषि का नाम प्रवर है।

ब्राह्मण प्रभाव वर्णनम्—

बृदद्धारते—पृथिव्यांयानि तीर्थानि तानि सर्वाणि सागरे।
सागरः सर्व तीर्थानि पदे विप्रस्य दक्षिणे॥

भागवते— अव्यक्त रूपिणो विष्णोः स्वरूपं ब्राह्मणा भुवि।
नावमान्याविरोधव्याः कदाचिच्छुभमिच्छता॥
यत्फलं कपिला दाने कार्तिक्यां ज्येष्ट पुष्करे।
तत्फलं पांडव श्रेष्ठ विप्राणां पाद धावने॥

भावार्थ— पृथ्वी पर जो तीर्थ हैं वे सब समुद्र में हैं।

सागर तथा सब तीर्थ ब्राह्मण के दाहिने चरण में हैं। पृथ्वी पर ब्राह्मण परमात्मा के दूसरे स्वरूप हैं अतः शुभ की इच्छा करने वाला जन इनका कभी तिरस्कार न करे और इनके साथ कभी विरोध भी न करे। जो फल कार्तिक की पूर्णिमा को ज्येष्ठ पुष्कर में कपिला गौओं के दान से होता है वह फल ब्राह्मणों के पाद प्रक्षालन अर्थात् चरण धोकर पीने में होता है।

मनु— उत्तमाङ्गोद्भवाज्ज्यैष्ठ्यात् ब्रह्मणश्चैव धारणात्।
सर्वस्यैवास्य सर्गस्य जन्मतो ब्राह्मणो गुरुः॥

भावार्थ— उत्तम अङ्ग मुख द्वारा उत्पन्न होने से, ज्येष्ठपन से, और वेद के धारण करने से इस सब जगत का जन्म से ही ब्राह्मण गुरु हैं।

यस्यास्येन सदाश्नन्ति हव्यानि त्रिदिवौकसः।
पितरःश्चैव कव्यानि किं भूतमधिकतः॥

भावार्थ— जिसके मुख द्वारा देवता हव्यों को और पितर कव्यों को पाते हैं उस ब्राह्मण से अधिक बढ़ कर और प्राणि कौन है! अर्थात् कोई नहीं।

ब्राह्मण धर्म वर्णनम्—

ब्रह्मपुराणे—वेदमार्गी च सन्तोषी गुरुभक्तश्च ब्रह्मवित्।
षट्कर्मी च स्वतन्त्रश्च स विप्रो धर्म पालकः॥

मनु— धृति क्षमा दमोस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रह ।
धी विद्या सत्यम् क्रोधो दशकं धर्म लक्षणम् ॥

भावार्थ— जिस ब्राह्मण में ये छः लक्षण हैं वह वेद-मार्गी है। जो वेद के मार्ग पर चलता है। यथालाभ सन्तोषी है। माता-पिता, गुरु, अतिथि, वृक्षों की सेवा करने वाला है। वेद के वाच्य, लक्ष्य, व्यंग्य अर्थ को जानने वाला है। स्वतन्त्र है। अध्यायन-अध्ययन, यजन-याजन, दान-परिग्रह इन छहों कर्मों को करता है। वही वेदमार्गी है।

धैर्य, क्षमा, मन-दमन, चोरी का त्याग, पवित्रता, इन्द्रियनिग्रह, सत्-असत् के विचार वाली बुद्धि, वेद-विद्या, सत्यभाषण, क्रोध का त्याग ये दश धर्म के लक्षण हैं। इन्हीं का मनन करना ब्राह्मण का श्रेष्ठ धर्म तथा कर्तव्य है।

मनु— वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः ।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ॥

भावार्थ— वेदोक्त, स्मृत्युक्त, सदाचार, अपनी आत्मा को प्रिय, यह चार प्रकार का साक्षात् धर्म का लक्षण है।

ब्राह्मण-जीविका—

मनु— ऋतामृताभ्यां जीवेत मृतेन प्रमृतेनवा ।
सत्याऽनृतेनवा विप्रो नश्ववृत्या कदाचन ॥

भावार्थ— ब्राह्मण ऋत (शिलोञ्छ) वृत्ति से जीवे, अथवा उनके अभाव में अमृत (अयाचित) वृत्ति से जीवे। उसके अभाव में मृत (भिक्षा) वृत्ति से तथा प्रमृत (खेती) की वृत्ति से जीवे, अथवा उनके अभाव में सत्यानृत (वाणिज्य-व्यवहार) वृत्ति से जीवे, परन्तु श्ववृत्ति (दासवृत्ति) से कभी न जीवे, अर्थात् कुत्ते की तरह जीविका न बितावे।

विद्या शिल्पं भृतिः सेवा गोरक्षं विपणिः कृषिः ।
धृतिर्भैक्ष्यं कुसीदञ्च दशजीवन हेतवः ॥

भावार्थ— विद्या, कारीगरी, राजा की ओहदेदारी, अन्य सेवा, गोपालन, वाणिज्य, खेती, सन्तोष, भिक्षा, ब्याज ये जीवन के दश कारण हैं। जीविका के लिये इतने काम करने से जाति नहीं बदल सकती।

वर्ण लक्षणम्—

गुरुस्मृतौ— केवलं विद्यया जात्या न वर्णः कर्मणाः भवेत् ।
त्रिकेणोक्तेन पूर्णेन वर्णो भवति निर्मलः ॥

गीता— चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुण कर्म स्वभावतः ।
तस्य कर्तारं मपिमां विद्धय कर्तार मव्ययम् ॥

भावार्थ— केवल विद्या से, जन्म जाति से, तथा कर्म

से, अर्थात् एक एक से माननीय वर्ण नहीं होता। किन्तु पूर्वोक्त त्रिक कहिये; जन्म, गुण, कर्म इन तीनों के मिलने से वर्ण निर्मल होता है।

गुण, कर्म तथा स्वभाव से मैंने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र इन चार वर्णों को बनाया। उसका करने वाला तथा न करने वाला मुझे जान।

❀ ॐ ❀

— तृतीय खण्ड —

गौड़ोत्पत्ति

गौड़ प्रभाकरे— श्वेत बाराहकल्पे स्मिन्नादौ जाता महर्षयः।
ब्रह्मणो दश पुत्रास्ते गौड़ा सद्धर्म रक्षकाः॥

भावार्थ— आदिकल्प में जो ब्रह्मा के दश पुत्र महर्षि हुए वे सब इस श्वेतकल्प में वेदधर्म रक्षक आदि गौड़ ब्राह्मण कहाये।

हेमचन्द्र— आदि शब्द पदं दत्वा ब्रह्मणातु स्वयम्भुवा।
दत्तोवेदोपिते नैव ह्यादि गौड़ स्ततोमतः॥

भावार्थ— स्वयंभू ब्रह्मा ने आदि शब्द उपाधि का पद देकर उसी ने वेदों को दिया। अतएव आदि गौड़ कहाये।

ब्रह्मपुराणे—आदौ जाताः कुरुक्षेत्रे ब्राह्मणा वेदपारगाः।
श्वेतवाराहऽकल्पे स्मिन्नादि गौड़ास्तपोधनाः॥

भावार्थ— इस श्वेत वाराहकल्प की आदि में कुरुक्षेत्र ब्रह्मवेदी पर तपोधन वेदपाठी आदि गौड़ ब्राह्मण प्रथम हुए।

महाभारते— ब्रह्मवेदिः कुरुक्षेत्रं पंच रामह्रदान्तरम् ।
ब्रह्मधर्म कुरुक्षेत्रं द्वादश योजनावधि ॥

भावार्थ— ब्रह्मवेदी कुरुक्षेत्र पंचरामह्रद के अन्तर में ब्रह्मक्षेत्र, धर्मक्षेत्र, कुरुक्षेत्र भूमि की बारह योजन यानि ४८ कोस की अवधि है ।

गौड़निबन्धे— ब्राह्मणाः पूर्व कल्पादि ह्यादि गौड़ा
स्तपोधनाः । ब्रह्मतीर्थे तथा जाताः
कल्पेऽस्मिन् वेद पारगाः ॥

भावार्थ— प्रथम कल्प की आदि में तपोधन आदिगौड़ ब्राह्मण हुए वैसे ही इस श्वेतवाराहकल्प विषै ब्रह्मतीर्थ ब्रह्मवेदी, कुरुक्षेत्र में वेदपाठी आदिगौड़ ब्राह्मण हुए ।

परशुवँश आदिगौड़ ब्राह्मणः त्रेतायां प्रसिद्धमित्याहः

रामो दाशरथि श्रीमान् पितुर्वचन गौरवात् । दंडकारण्यकं गत्वा निवासमकरोत् पुरा ॥१५॥ सुरारि रावणं हत्वा स पुत्र बलवाहनम् । अयोध्यामगमच्छ्रीमान् सीता लक्ष्मण संयुतः ॥ १६ ॥ ततो ब्रह्मवधाद्भीतो रामो यज्ञं चकारह । ब्रह्म देशात् समाहूताश्चादि गौड़ा द्विजोत्तमाः ॥ १७ ॥ तेषाञ्चवरणं चक्रे यज्ञे विपुल दक्षिणे ।

विप्राश्च कारयामासु र्यज्ञं विधि विधायतः ॥ १८ ॥ चत्वारिंशं चतुर्युक्तं चतुर्दश शतानि च । तत्र यज्ञे चये विप्राहोतार ऋत्विजोऽभवन ॥ १९ ॥ तेभ्यो रामो ददौ ग्रामान् सम संख्यात्मकान्मुदा । तावन्तश्चोप गोत्राणि उपनामा निवैभुवि ॥ २० ॥

भावार्थ— मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्री रामचन्द्रजी पिता दशरथ के आदेशानुसार चौदह वर्ष वन में रहे । वहाँ से लंका में जाकर रावण को मार कर लक्ष्मण और सीता सहित अयोध्या में आये । ब्रह्म-वध के भय से भयभीत होकर कुरु-क्षेत्र से आदिगौड़ ब्राह्मणों को यज्ञ करने के लिये बुलाया । बहुत दक्षिणा वाले यज्ञ में उन ब्राह्मणों के बरणी बांधी । ब्राह्मणों ने वेद की विधि से यज्ञ कराया । यज्ञ समाप्ति के पश्चात् उनको दक्षिणा-स्वरूप १४४४ ग्राम दिये । अतः इसी के शासन-रूप आदिगौड़ ब्राह्मणों में उतने ही यानि १४४४ शासन उपगोत्र (उपनाम) पृथ्वी पर प्रसिद्ध हुए ।

इसका विस्तृत वर्णन गौड़ संहिता में मिलता है ।

' रान रमापति कर धनु लेहू ।'

स्कन्दपुराणे गौड़स्मृतौच :—

देवर्षि गौड़देशाच ह्यादिगौड़ा समागताः ।

द्वापरान्ते महातीर्थे सर्पयज्ञे तपोधनाः ॥
तेभ्यो राजा ददौ ग्रामान् समसंख्यात्मकान्मुदा ।
चत्वारिंशंचतुर्युक्तं चतुर्दश शतानि च ॥

भावार्थ— द्वापर के अन्त में भी महातीर्थ अर्थात् कुरुक्षेत्र भूमि में सर्पदमन यज्ञ में देवर्षि गौड़देश से आदिगौड़ ब्राह्मण यज्ञ कराने के लिये आये। राजा जनमेजय ने प्रसन्न होकर उनको १४४४ समान संख्या के ग्राम दिये। उनके देने से भी आदिगौड़ ब्राह्मणों के १४४४ शासन हुए।

इस प्रकार श्री रामचन्द्रजी और राजा जनमेजय दोनों ने मिल कर सब २८८८ ग्राम दिये जिसके फलस्वरूप आदिगौड़ ब्राह्मणों में २८८८ शासन प्रसिद्ध हो गये।

सह्याद्रि खण्डे— सृष्ट्यारम्भे ब्राह्मणस्य प्रकीर्तिता ।
एवं पूर्वं जातिरेका ब्राह्मणस्य प्रकीर्तिता ॥ गौड़ द्राविड़ भेदेन पुनः सा द्विविधाऽभवत् ॥
पञ्चगौड़ास्ततो जाता द्राविड़ाश्च तथाविधाः । एवं सा दशधाभिन्ना तेषां नामानि मे शृणु ॥ सारस्वताः कान्यकुब्जा गौड़ाश्च मैथिलास्तथा । उत्कलाः पञ्चगौड़ाख्या विन्ध्यस्योत्तर वासिनः ॥ कर्णाटकाश्च तैलंगा महाराष्ट्र

श्च द्राविड़ा । गुर्जराश्चेति पञ्चैते द्राविड़ा विन्ध्य दक्षिणे ।

भावार्थ— इस प्रकार सृष्टि के आरम्भ में ब्राह्मण एक ही प्रकार के होते थे। फिर ब्राह्मण 'गौड़' और 'द्राविड़' नाम से दो भेद में विभक्त हुए। फिर गौड़ पाँच प्रकार के और द्रविड़ पाँच प्रकार के हुए। इस प्रकार ब्राह्मणों के दस भेद हुए।

१. सारस्वत २. कान्यकुब्ज ३. गौड़ ४. मैथिल ५. उत्कल ये पाँच प्रकार के ब्राह्मण विन्ध्याचल के उत्तर देशों में रहते हैं। ये पंचगौड़ के नाम से प्रसिद्ध हैं।

१. महाराष्ट्र २. तैलंग ३. कर्णाटक ४. गुर्जर ५. द्रविड़ ये पाँच विन्ध्याचल के दक्षिण देशों में रहते हैं और इन्हें पंचद्राविड़ के नाम से पुकारते हैं।

निम्न लिखित श्लोक से यह स्पष्ट सिद्ध है कि पूर्वोक्त पंचगौड़ तथा पंचद्राविड़ ब्राह्मणों से ८४ यानि चौरासी जाति के ब्राह्मण हुए। इनके और भी उपब्राह्मण तथा प्रकीर्ण हुए हैं।

तेभ्यो विनिर्गता भूभ्यां चतुराशीति ज्ञातयः ।
अन्येपि बहवः सन्ति प्रकीर्णाश्चोप ब्राह्मणः ॥

गौड़ निबन्धे च—नानाभेदगता विप्रा गौड़द्राविड़ संज्ञकाः ।
तेभ्यो विनिर्गता लोके ब्रह्मज्ञातिः सहस्रशः ॥

उपरोक्त दश भेदों से निकल कर नाना प्रकार के चौरासी ब्राह्मण हुए। आगे चल कर फिर लोक में सहस्रों ब्राह्मणों की अनुमानतः दो सहस्र जाति हो गई हैं।

—: देशानाह :—

मनु०— सरस्वती दृषद्वत्यो र्देवनद्योर्यदन्तरम्।
तं देव निर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते॥

सरस्वती और दृषद्वती देवताओं की नदियों के मध्य का जो देवताओं का रचा हुआ है, उस देश को मुनियों ने ब्रह्मावर्त कहा है।

तस्मिन्देशेय आचारः पारंपर्यक्रमादगतः।
वर्णानां सान्तरालानांस सदाचार उच्चते॥

उस देश के चारों वर्ण और शंकर जातियों के जो आचरण हैं, वे ही मनुजी ने सत्पुरुषों के आचरण कहे हैं।

आचारः परमोधर्म सर्वेषामिति निश्चयः।
आचारहीन देहस्य भवेद्धर्मः पराङ्मुखः॥

आचार ही पवित्र धर्म है। इससे हीन देह-धर्म से विमुख है। अतः आचार हीन को वेद एवं शास्त्र भी पवित्र करने में असमर्थ हैं। दान, व्रत, तीर्थादि शुभ कर्म इत्यादि तो क्या पवित्र करेंगे। कहा भी है:—आचारहीनं न पुनन्तिवेदाः।

भाग०— कुरुक्षेत्रं च मत्स्याश्चपञ्चालाः शूरसेनकाः।
एष ब्रह्मर्षि देशोवै ब्रह्मावर्तादनन्तरः॥

कुरुक्षेत्र, मत्स्य, पञ्चाल, शूरसेन, ब्रह्मर्षियों के रह के योग्य ये देश ब्रह्मावर्त के अनन्तर समान हैं।

एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वंस्वंचरित्रं शिक्षेरन्पृथिव्यां सर्वमानवाः॥

कुरुक्षेत्र आदि देशों में पैदा हुए ब्राह्मणों के सकाश पृथ्वी के सम्पूर्ण मनुष्य अपने अपने आचरण को सीखें।

हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्यं यत्प्राग्विनशनादपि।
प्रत्यगेव प्रयागाच्च मध्यदेशः प्रकीर्तितः॥

हिमालय और विन्ध्याचल के मध्य को और कुरुक्षेत्र पूर्व और प्रयाग से पश्चिम के देश को मनुजी ने मध्यदे कहा है।

आसमुद्रात्तु वैपूर्वादा समुद्रात्तु पश्चिमात्।
तयोरेवान्तरं गिर्योरार्यावर्तं विदुर्बुधाः॥

पूर्व के समुद्र से पश्चिम के समुद्र तक और हिमाल और विन्ध्याचल का मध्य भाग इस देश को पंडितजन आय वर्त कहते हैं।

बङ्गदेश समारभ्य भुवने शान्तगं शिवे ।
गौड़देशः समाख्यातः सर्वविद्याविशारदः ॥

हे शिवे ! बंग देश से लेकर कन्याकुमारी तक सब गौड़ देश है। यह सम्पूर्ण विद्याओं में शिरोमणि था। अतएव इस देश के रहने वाले ब्राह्मणों की गौड़ संज्ञा हुई। ऐसा शक्ति संगम तन्त्र सप्तम पटले में लिखा है।

❀ ॐ ❀

— चतुर्थ खण्ड —

—: वंशोत्पत्ति :—

मनु०—सोऽभिध्याय शरीरात्स्वात् सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः
अपएव ससर्जादौ तासु बीज मवासृजत् ॥
तदण्ड मभवद्धैमंसहस्रांशु समप्रभम् ।
तस्मिन् जज्ञेस्वयं ब्रह्मा सर्वलोक पितामहः ॥

भावार्थ— अनेक प्रकार की प्रजा की रचने की इच्छा जिसको ऐसा वह ब्रह्म प्रथम अपने प्रकृतिरूप पूर्व अव्याकृत शरीर से जलों को रचता हुआ और उन जलों अपनी शक्ति का स्थापन करता हुआ। वह बीज निर्मल अ सूर्य्य के समान कांतिवाला अंडा हो गया और उस अंडे सब लोकों का पैदा करने वाला ब्रह्मा स्वयं (बिना किसी पैदा किये) पैदा हुआ।

मनु०— अहं प्रजाः सिसृक्षु स्तुतपस्तप्त्वासुदुश्चरम् ।
पतीन्प्रजानामसृजं महर्षीनादितौ दश ॥

भावार्थ— प्रजा की रचना करने की है इच्छा जिसको ऐसा मैं बड़ा भारी तप करके प्रथम प्रजा के पति दश महर्षियों को रचता हूँ। अर्थात् मैंने वे दश रचे और उन्होंने यज्ञ आदि रचे— इसी से उनको भी प्रजा के पति कहते हैं।

मनु— मरीचिमत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्।
प्रचेतसं वसिष्ठंच भृगुं नारदमेवच ॥

भावार्थ— पिछले श्लोकों में जो दश महर्षि कहे हैं वे ये हैं:— १. मरीचि, २. अत्रि, ३. अङ्गिरा, ४. पुलस्त्य ५. पुलह ६. क्रतु ७. प्रचेता ८. वशिष्ठ ९. भृगु १०. नारद ये दस महर्षि मैंने प्रथम रचे।

जगृहे पौरुषं रूपं भगवान् महदादिभिः।
संभूतं षोडशकलमादौ लोक सिसृक्षया ॥
यस्यांभसि शयानस्य योग निद्रां वितन्वत।
नाभि ह्यां बुजा दासीद ब्रह्मा विश्वसृजांपतिः ॥
(भाग० स्कं० प्र० अ० ३ श्लोक १-२)

भावार्थ— भगवान ने महतत्त्व आदि से पुरुषरूप धारण किया, संसार रचने की इच्छा कर सोलह कला के रूप से अवतार लिया। जब नारायण ने योगनिद्रा विस्तारी उस समय श्री नारायण की नाभिरूप सरोवर के कमल में से विश्व

रचने वालों के पति ब्रह्माजी उत्पन्न हुए।

मरीचिरत्र्यं गिरसो पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः।
भृगुर्वसिष्ठो दक्षश्च दशमस्तत्र नारदः ॥ २२ ॥
उत्संगान्नारदो जज्ञे दक्षोऽगुष्ठात् स्वयं भुवः।
प्राणाद वसिष्ठः संजातो भृगुस्त्वचि करात्क्रतुः ॥२३॥
पुलहो नाभितो जज्ञे पुलस्त्यः कर्णयो ऋषिः।
अंगिरा मुखतोऽक्ष्णोऽत्रि र्मरीचिर्मनसोऽभवत् ॥
छायायाः कर्दमो जज्ञे देव हूत्याः पतिः प्रभुः ॥ २७ ॥
[भाग० तृ० स्कं० अ० १२]

भावार्थ— ये दश पुत्र ब्रह्मा के हुए:— १. मरीचि २. अत्रि ३. अंगिरा ४. पुलस्त्य ५. पुलह ६. क्रतु ७. भृगु ८. वसिष्ठ ९. दक्ष १०. नारद। ब्रह्मा की गोद से नारद, अंगूठे से दक्ष, प्राण से वसिष्ठ, त्वचा से भृगु, हाथ से क्रतु हुए। नाभि से पुलह, कानों से पुलस्त्य, मुख से अङ्गिरा, आँखों से अत्रि, मन से मरीचि तथा ब्रह्मा की छाया से कर्दम हुआ। ये देवहुति के पति हुए।

अथ च— मरीचये कलां प्रादादनसूया यथात्रये।
श्रद्धामंगिरसेऽयच्छत् पुलस्त्याय हविर्भुवम् ॥२२॥

पुलहाय गतिं युक्तां क्रतवे च क्रियां सतीम् ।
ख्यातिं च भृगवेऽयच्छद् वसिष्ठायाप्यरुंधतीम् ॥
॥ २३ ॥ [भाग० तृ० स्कं० अ० २४]

भावार्थ— कर्दम समस्त विद्याओं में निपुण थे। स्वायंभुमनु की कन्या देवहुति से इनका विवाह हुआ था। इन के नव कन्यायें उत्पन्न हुईं। और एक कपिलदेव नामक पुत्र ईश्वर का अवतार हुआ। उपरोक्त मुनियों को निम्नाङ्कित कन्यायें व्याही गईं। मरीचि को कला, अत्रि को अनसूया, अंगिरा को श्रद्धा, पुलस्त्य को हविर्भु वा, पुलह को गति, क्रतु को क्रिया, भृगु को ख्याति और वसिष्ठ को अरुन्धती।

अब मैं और ऋषियों को छोड़ कर भृगु महर्षि जो हमारे वंश के आदि ऋषि व प्रवर्तक हैं वर्णन करता हुआ वंश के अनुक्रम को लेता हूँ।

—: भृगु—शब्दार्थ :—

भृगुः = पुंलिङ्ग। तपसा भृज्यते पंचतपादिभिर्वेत्ति।
अथवा भृकज्वाला तया सहोत्पन्न इति उ०।
स तु ब्रह्मण स्त्वचो जातः।
अथास्योत्पत्तिर्नाम निरुक्तिश्च महाभारते ॥
।१३।८५।१०५।१०६।

सब के मन में धर्म की आग को प्रकाश करना। एक प्रसिद्ध ऋषि। ब्रह्मा का पुत्र— प्रजापति। इति श्रीधर कोषे।

—: भृगु का महत्व :—

महर्षिणां भृगुरहं इति गीता।

महर्षियों में भृगु मेरी विभूति है। ऐसा श्रीकृष्ण ने गीता में दसवें अध्याय में कहा है।

भृगुर्यत्र तपस्तेपे महर्षिगण सेविते।
राजन् स आश्रमः ख्यातो भृगुतुंगो महागिरिः ॥
(महा० व० अ० ६।२३)

भावार्थ— तुंगनाथ पर्वत महर्षि भृगु का आश्रम था। यही उनकी तपोभूमि थी।

वह्नि पुराणे वरसर्ग नामाध्याये प्यस्य समुत्पत्तिः प्रदर्शिता। अस्य भार्या कर्दम मुनि सुता ख्यातिः। पुत्र धाता विधाता च। कन्या श्री, इति भागवते।

एक समय जनलोक निवासियों में वाद-विवाद हुआ कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन तीन देवताओं में महान् कौन है। अतः परीक्षार्थ तेजस्वी महर्षि भृगु को भेजा। सर्व प्रथम ब्रह्म लोक में गये। ब्रह्माजी पुत्र को आता देख कर अत्यन्त प्रसन्न

हुए। भृगुजी ने स्वभाव की परीक्षा करने के लिये उन्हें नमस्कार तक नहीं किया। इस पर ब्रह्माजी बहुत क्रोधित हुए तब भृगुजी दौड़ कर महेश के पास गये। गिरिजापति शिव भाई को आता देख कर प्रीतिपूर्वक मिलने को उद्यत हुए लेकिन भृगुज ने अपमान-जनक शब्द कहे। महादेव यह न सह सके। वे क्रोधान्ध हुए हाथ में त्रिशूल लेकर मारने को दौड़े परन्तु पार्वती ने उनके क्रोध को येनकेन प्रकारेण शान्त किया। अब भगवान विष्णु के स्वभाव की परीक्षा करनी थी। अतः—

अथो जगाम वैकुण्ठं यत्र देवो जनार्दनः ॥ ७ ॥
शयानं श्रियउत्संगे पदा वक्षस्यताऽयत् ।
तत उत्थाय भगवान सह लक्ष्म्या सतांगतिः ॥
स्वतल्पादवरुह्याय ननाम शिरसामुनिं ॥ ८ ॥
आह ते स्वागतं ब्रह्मन् निषीदात्रासनेक्षणम् ।
अजानता भागतान् वः क्षंतुमर्हथ न प्रभो ॥ ९ ॥
अतीव कोमलौ तात चरणौ ते महामुने ।
इत्युक्त्वा विप्र चरणौ मर्दयन् स्वेन पाणिना ॥ १० ॥
पुनीहि सहलोकं मां लोकपालांश्च मृद्गतान् ।
पादोदकेन भवतस्तीर्थानां तीर्थ कारिणा ॥ ११ ॥

अद्याहं भगवँल्लक्ष्म्या आसमेकांतभाजनम् ।
वत्स्यत्युरसि मे भूतिर्भवत्याद हतां हसः ॥ १२ ॥
(भाग० द० स्कं० अ० ८९)

भावार्थ— महर्षि भृगु तब बैकुण्ठ में बिष्णु के पास गए। लक्ष्मी की गोद में सोये थे सो हृदय में लात मारी। अच्छे पुरुषों की गति करने वाले श्री भगवान उठे। अपने पलंग से उठ कर के मुनी को प्रणाम किया। उनका उचित स्वागत करके क्षण भर आसन पर बैठने को कहा। आप पधारे इसकी मुझे मालूम न हुई। हे प्रभो! मुझे क्षमा करो। हे ऋषिवर्य्य! आपके चरण अत्यन्त कोमल हैं। ऐसा कह करके अपने हाथों से उनके चरण-कमल सहलाने लगे। गङ्गादिक तीर्थों को पवित्र करने वाले अपने चरणों के जल से मुझे और मुझ में वास करने वाले लोक और लोकपालों को पवित्र करो। हे ब्राह्मण! अब लक्ष्मी के वास करने का पात्र हुआ। और तुम्हारे चरण-स्पर्श से पाप दूर हुए, इसलिये मेरी छाती में सदा लक्ष्मी वास करेगी।

तत्पश्चात् वहां से आदरपूर्वक लौट कर जनलोकवासियों को सारा वृत्तान्त कह सुनाया और कहा कि तीनों देवताओं में विष्णु बड़े हैं क्योंकि उनमें क्षमा है, वे क्षमाशील हैं।

यह महर्षि भृगु की तपस्या का आतंक व उनकी सामर्थ्य का ज्वलन्त प्रमाण है।

— भृगोत्पत्ति —

पुनः शारत्तादपिज्ञेयम् ब्रह्मणो हृदयं भीत्वा निःसृतो भगवान्भृगुः ॥ ४१ ॥

ब्रह्माण्ड रचयिता ब्रह्मा के हृदय से भृगु उत्पन्न हुए।

भृगोः पुत्रः कविर्विद्वांच्छुक्रः कवि सुतो ग्रहः त्रैलोक्य प्राणयात्रार्थं वर्षावर्षे भयाभये ॥ ४२ ॥

स्वयंभुवा नियुक्तः सन् भुवनं परिधावति योगाचार्यो महा-बुद्धिर्दैत्यनाममवद्गुरुः सुराणांचापि मेधावी ब्रह्मचारी यतव्रतः ॥ ४३ ॥

तस्मिन्नियुक्ते विधिना योग क्षेपाय भार्गवे।
अन्यमुत्पादयामास पुत्रं भृगुरनिंदितम् ॥ ४४ ॥
च्यवनं दीप्ततपसं धर्मात्मानं यशस्विनम्।
यः सगेषाच्युतो गर्भान्मातुर्मोक्षाय भारत ॥ ४५ ॥
आरुषी तु मनोः कन्या तस्य पत्नी मनीषिणः।
और्वस्तस्यां समभवदूरुं भित्वा महाशयाः ॥ ४६ ॥

महातेजा महावीर्यो बाल एव गुणैर्युतः।
ऋचीकतस्य पुत्रस्तु जमदग्नि ततोऽभवत् ॥ ४७ ॥
जमदग्नेस्तु चत्वारः आसन्पुत्रा महात्मनः।
रामस्तेषां जघन्योऽभूदजघन्यै गुणैर्युतः ॥ ४८ ॥
सर्व शास्त्रेषु कुशलः क्षत्रियांतकरो वशी और्वस्यासीत्पुत्र-शतं जमदग्नि पुरोगमन् तेषां पुत्र सहस्राणि बभूवुर्भुवि विस्तरः ॥ ४९ ॥ महाभारते आदि प० अ० ६३ ॥

भावार्थ— भृगु के एक शुक नाम वाला ज्ञानी पुत्र उत्पन्न हुआ। त्रिलोकी की रक्षा के लिये व भय-अभय के लिये तथा वृष्टि-अनावृष्ट के लिये ब्रह्मा ने नियुक्त किया। चौदह भुवनों में विचरता है। योग का आचार्य है। कुशाग्र बुद्धि वाला है। इसलिए दैत्यों का गुरु हुआ और देवताओं में बुद्धिमान हुआ, ब्रह्मचारी और दृढ व्रत वाला हुआ। योग व कल्याण के लिये ब्रह्माने शुक्राचार्य को नियुक्त किया। ततपश्चात् भृगुजी ने निन्दारहित पुत्र उत्पन्न किया। च्यवन नाम वाला तपस्वी, धर्मात्मा व यशस्वी हुआ। वह क्रोध से माता के गर्भ से निकला। आरुषी नाम की मनु की कन्या उसकी धर्मपत्नी हुई। वह बुद्धिमान थी। आरुषी की जंघा भेदन करके महायशस्वी और्व उत्पन्न हुआ। उसके ऋचीक नाम का महातेजस्वी और परा-

क्रमी पुत्र उत्पन्न हुआ। वह बचपन से ही सर्वगुणसम्पन्न था। उसके जमदग्नि हुआ। महात्मा जमदग्नि के चार पुत्र हुए। उन में से राम (परशुराम) छोटे हुए। परन्तु वे सर्वगुण-मंडित थे। सब शास्त्रों में निपुण थे। क्षत्रियों का नाश करने वाले तथा स्वतन्त्र थे। फिर और्व्व के सौ पुत्र हुए। उनमें जमदग्नि सबसे बड़े थे। उन सब के हजारों पुत्र उत्पन्न हुए जो कि संसार में विख्यात हुए।

तस्याः कुमाराश्चत्वारो जज्ञिरे राम पञ्चमाः।
सर्वेषामजघन्यस्तु राम आसीन्नघन्यजः ॥ ४ ॥
ततो ज्येष्ठो जामदग्न्यो रुक्मण्वान्नाम नामतः।
आजगाम सुषेणश्च वसुर्विश्वावसुस्तथा ॥ १० ॥

[महाभारत व० प० अ० ११३]

भावार्थ— रेणुका के चार कुमार हुए, जिनमें श्री परशुराम पाँचवें थे। सब भाईयों से कनिष्ठ थे परन्तु गुणों में बड़े थे। सब से बड़े भाई का नाम रुक्मण्वान था। दूसरा सुषेण, तीसरा वसु और चौथे पुत्र का नाम विश्वावसु था।

भृगोर्महर्षेः पुत्रोऽभूच्च्यवनो नाम भारत।
समीपे सरसस्तस्य तपस्तेपे महाद्युतिः ॥ १ ॥

ऋषेर्वचन माज्ञाय शर्यातिरविचारयन्।
ददौ दुहितरं तस्मै च्यवनाय महात्मने ॥ ३६ ॥

(महाभारत व० अ० १२२)

भावार्थ— महर्षि भृगु के च्यवन नाम का पुत्र हुआ। महातेजस्वी च्यवन सरोवर के सन्निकट तपस्या करते थे। सर्याति की कन्या ने उनके नेत्र भ्रमवश छेदन कर डाले। इस से ऋषि क्रोधित हुए। तब राजा सर्याति ने अपनी कन्या महर्षि च्यवन को दे दी।

तत्र पुण्यो ह्रदःख्यातो मैनाकश्चैव पर्वतः।
बहुमूल फलोपेत स्त्वसितो नाम पर्वतः ॥ ११ ॥
आश्रमः कक्षसेनस्य पुण्यस्तस्य युधिष्ठिर।
च्यवनस्याश्रमश्चैव विख्यातस्तत्र पांडव ॥ १२ ॥

भावार्थ— मैनाक पर्वत पर एक पवित्र और विख्यात झील थी। असित नाम का पर्वत उस से लगा हुआ था। स्थान कन्द-मूल-फल से सम्पन्न था। हे युधिष्ठिर ! वहां कक्षसेन तथा च्यवन का आश्रम बहुत प्रसिद्ध था।

(महा० व० अ० ८६)

भृगुर्यत्र तपस्तेपे महर्षिगण सेविते।
राजन स आश्रमः ख्यातो भृगुतुंगो महागिरौ ॥ २३ ॥

भावार्थ -- वहीं भृगुजी तपस्या करते थे। वह भृगुतुङ्ग महागिरी महर्षिगणों से युक्त था। अतः आश्रम बहुत विख्यात था। (महा० व० अ० ६०)

— ऋचीक और सत्यवती का आख्यान —

गाधेः कन्या महाभागा नाम्ना सत्यवती शुभा।
तां गाधिर्भृगुपुत्राय ऋचीकाय ददौ प्रभुः ॥ १७ ॥

तस्याः प्रीतो भवद्भर्ता भार्गवो भृगुनन्दनः।
पुत्रार्थं कल्पयामास चरुं गाधेस्तथैव च ॥ १८ ॥

उवाचाहूयतां भर्ता ऋचीको भार्गवस्तदा।
उपयोज्यश्चरुरयं त्वया मात्रा त्वयं तव ॥ १९ ॥

तस्यां जनिष्यते पुत्रो दीप्तिमान्क्षत्रियर्षभः।
अजेयः क्षत्रियैर्लोके क्षत्रियर्षभसूदनः ॥ २० ॥

तवापि पुत्रं कल्याणि धृतिमंतं तपोनिधिम्।
शमात्मकं द्विजश्रेष्ठं चरुरेव विधास्यति ॥ २१ ॥

एवमुक्त्वा तु तां भार्यामृचीको भृगुनन्दनः।
तपस्यभिरतो नित्यपरस्यं प्रविवेशह ॥ २२ ॥

गाधिः सदारस्तु तदा ऋचीकावासमभ्यगात्।
तीर्थयात्रा प्रसंगेन सुतां द्रष्टुं जनेश्वरः ॥ २३ ॥

भावार्थ— सत्यवती नाम की महाभाग्यशाली गाधि की कन्या थी। गाधिराज ने उसका पाणिग्रहण महर्षि भृगु के पुत्र ऋचीक के साथ किया। भृगुनन्दन ऋचीक ने प्रसन्न हो कर गाधिराज और अपने लिये पुत्रोत्पत्ति के लिये दो चरू जल से भर कर अभिमन्त्रित किये। तब ऋचीक ने सत्यवती को बुला कर कहा, " इस जल-पूरित चरू को मन्त्र द्वारा अभिमन्त्रित करके तुम्हारी माता के लिए तैयार किया है, और यह दूसरा तुम्हारे लिये है। उसके क्षत्रियों में श्रेष्ठ और तेजस्वी पुत्र होगा, जो संसार में क्षत्रियों में अजय होगा। क्षत्रियों का संहार करने वाला होगा। हे पुण्यभागा! तेरा भी पुत्र धैर्यशाली, तपस्वी, शमात्मक और द्विजों में श्रेष्ठ इस बीजाभिमंत्रित चरू के प्रभाव से होगा।" इस प्रकार ऋचीक अपनी धर्मपत्नी से कह कर तपस्या के लिये वन में चले गये। तब गाधिराज भार्या सहित ऋचीक के आश्रम में अपनी कन्या को देखने के लिये यात्रा के प्रसंग से चला गया।

चरुद्वयं गृहीत्वातद्दृषेः सत्यवती तदा।
चरुमादाय यत्नेन सातु मात्रे न्यवेदयत् ॥ २४ ॥

माताऽप्यस्तस्य दैवेन दुहित्रे स्वंचरुं ददौ ।
तस्याश्चरू मथाज्ञानादात्मसंस्थं चकारह ॥ २५ ॥
अथ सत्यवती गर्भं क्षत्रियांतकरं तदा ।
धारयामास दीप्तेन वपुषा घोर दर्शनम् ॥ २६ ॥
तामृचीकस्ततो दृष्ट्वा योगेनाभ्यनुसृत्य च ।
तामब्रवी द्विज श्रेष्ठः स्वां भार्यां वर वर्णिनीम् ॥ २७ ॥
मात्रासिवं चिताभद्रे चरु व्यत्या सहेतुना ।
जनिष्यति हि पुत्रस्ते क्रूर कर्माति दारुणः ॥ २८ ॥
भ्राता जनिष्यते चापि ब्रह्मभूत स्तपोधनः ।
विश्वं हि ब्रह्मतपसा मया तस्मिन्समर्पितम् ॥ २९ ॥
एवमुक्ता महाभागा भर्त्रा सत्यवती तदा ।
प्रसादयामास पतिं पुत्रो मेनेदृशो भवेत् ।
ब्राह्मणाय सदस्तत्र इत्युक्तो मुनिरब्रवीत् ॥ ३० ॥

भावार्थ— उस ऋषि के अभिमन्त्रित दोनों चरूओं को लेती हुई सत्यवती ने यत्नपूर्वक अपनी माता को दिया। प्रारब्धवश माता ने अपना चरू बेटी को दे दिया। और माता के चरू का जल अज्ञान से सत्यवती ने पी लिया। तदनन्तर

सत्यवती क्षत्रियों के नाश करने वाले गर्भ को धारण करती हुई तथा दिव्य नेत्रों से युक्त भयंकर गर्भ को देखती हुई। योग दृष्टि द्वारा ऋचीक ने देख कर उस से कहा, "हे भद्रे! तू माता द्वारा ठगी गई। अभिमन्त्रित चरुओं के परस्पर बदल देने से तेरे अत्यन्त भयंकर तथा क्रूर कर्म करने वाला पुत्र उत्पन्न होगा। ब्रह्मरूप व तपस्वी तेरा भाई होगा। क्योंकि ब्रह्म की उपासना से समस्त संसार को मैंने उसमें रक्खा था।" इस प्रकार पति ने अपनी पत्नी को कहा। उसने पति को येनकेन प्रकारेण प्रसन्न किया और कहा कि ऐसा पुत्र मेरे नहीं होना चाहिये। ब्राह्मणों में ऐसे अनुचित कर्म करने वाले का जन्म होना उत्तम नहीं। इसके बाद ऋचीक बोले:—

नैष संकल्पितः कामो मया भद्रे तथास्त्विति ।
उग्रकर्मा भवेत्पुत्रः पितुर्मातुश्च कारणात् ।
पुनः सत्यवती वाक्यमेव मुक्ता ब्रवीदिदम् ॥ ३१ ॥
इच्छं ल्लोकानपि मुने सृजेथाः किं पुनः सुतम् ।
शमात्मकं मृजु त्वं मे पुत्रं दातुमिहार्हसि ॥ ३२ ॥
काम मेवं विधः पौत्रो ममस्यात्तवच प्रभो ।
यद्यन्यथा न शक्यं वै कर्तुमेव द्विजोत्तम ॥ ३३ ॥
ततः प्रसादमकरोत्स तस्यास्तपसो बलात् ।

भद्रेनास्ति विशेषोमे पौत्रे च वर वर्णिनि ।
त्वया यथोक्तं वचनं तथा भद्रे भविष्यति ॥ ३४ ॥

भावार्थ— हे भद्रे ! ऐसे काम का तो मेरे संकल्प न था, परन्तु अब तुम कहोगे वैसा ही होगा। पिता और माता के कारण से पुत्र भयंकर कर्म करने वाला होगा। तब फिर सत्यवती ने ऋचीक से कहा, " हे मुने ! आप चाहें तो लोकों की रचना भी कर सकते हैं, तब फिर क्या पुत्र को उत्पन्न करना दुर्लभ कार्य है। आप मुझे ऐसा पुत्र दें जो कि समदर्शी और सुशील हो। यदि ऐसा न कर सको तो पौत्र तो होना ही चाहिये। यदि आप इस वचन को मिथ्या नहीं करना चाहते हो तो मेरे पौत्र हो जाय।" इस बात पर ऋचीक अत्यन्त प्रसन्न हुए और अपनी तपस्या के प्रभाव से अपनी भार्या से बोले, " हे भद्रे ! हे श्रेष्ठवर्णिनि ! पुत्र और पौत्र में कोई असमानता नहीं, इसलिये जो कुछ तुमने कहा है वैसा ही होगा।

— जमदग्नि का जन्म —

ततः सत्यवती पुत्रं जनयामास भार्गवम् ।
तपस्यभिरतं दांतं जमदग्नि शमात्मकम् ॥ ३५ ॥

मृगोश्चरु विपर्यासे रौद्रं वैष्णवयोः पुरा ।
यजनाद्वैष्णवेऽथांशे जमदग्नि रजायत ॥ ३६ ॥

भावार्थ— तदनन्तर सत्यवती के जमदग्नि नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ जो कि तपस्वी, इन्द्रियों का दमन करने वाला, समदर्शी और उदार था। ऋचीक द्वारा अभिमन्त्रित दोनों चरुओं में पहिले में शंकर का बीज तथा दूसरे में विष्णु का बीज था। अतः विष्णु के अंश वाले चरु का पूजन करने से जमदग्नि का जन्म हुआ।

— जमदग्नि का शब्दार्थ —

पुं० जमन्हुत भक्षणशीलः प्रज्वलित इत्यर्थ तथा विधोऽग्निरिव । सतु भृगु वंशोद्भव ऋचीक मुनी पुत्रः परशुराम पिता च ॥ इति श्री मद्भागवतं । अस्य जन्म विवरणादिकम् महाभारते वनपर्वणि ।११५।११६ अध्याये द्रष्टव्यम् ॥ अथ च—

इसकी गणना सप्त ऋषियों में की गई। विश्वामित्र के साथ ये वसिष्ठ के पक्षी थे। हरिश्चन्द्र के नरमेध यज्ञ में ये ऋत्विज हुए थे।

ये सब प्रमाण शब्दकल्पद्रुम, शब्दार्थ चिन्तामणि और

वाचस्पति ग्रन्थों में मिलते हैं। अतः अवशिष्ट ज्ञान के लिये पाठक वहीं देखें।

साहि सत्यवती पुण्या सत्यधर्म परायणा।
कौशिकीति समाख्याता प्रवृत्ते यं महानदी ॥ ३७ ॥
इक्ष्वाकुवंश प्रभावो रेणुर्नाम नराधिपः।
तस्य कन्या महाभागा कामली नाम रेणुका ॥ ३८ ॥
रेणुकायां तु कामल्यां तपोविद्या समन्वितः।
आर्चीको जनयामास जामदग्न्यं सुदारुणम् ॥ ३९ ॥
सर्व विद्यानुगं श्रेठं धनुर्वेदस्य पारगम्।
रामं क्षत्रिय हन्तारं प्रदीप्तमिव पावकम् ॥ ४० ॥
और्वस्यैव मृचीकस्य सत्यवत्यां महायशाः।
जमदग्निस्तपोवीर्या ज्ञज्ञे ब्रह्म विदांवरः ॥ ४१ ॥
मध्यमश्च शुनः शेपः शुन पुच्छ कनिष्ठकः ॥ ४२ ॥

(हरिवंश प० १ अ० २७ ॥

भावार्थ— धर्म और सत्य में परायण सत्यवती कौशिकी नामवाली विख्यात महानदी हो कर संसार में प्रसिद्ध हुई। इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न रेणु नाम राजा के महाभाग्यशाली कामली (रेणुका) नाम वाली कन्या उत्पन्न हुई। कामली यानि

रेणुका के जमदग्नि से विद्या से युक्त तथा प्रभावशाली परशुराम नामक पुत्र उत्पन्न हुआ जो कि सब विद्याओं में निपुण, शस्त्र-अस्त्र विद्या में विशारद, क्षत्रियों का संहार करने वाले, अग्नि के समान तेजपुञ्ज थे। और्व्व के ऋचीक की सत्यवती भार्या से तप और वीर्ययुक्त जमदग्नि का जन्म हुआ। वे ब्रह्मवेत्ता थे।

— ऋचीक और सत्यवती का आख्यान २ —

भागवतादपि ज्ञेयम् तस्य सत्यवतीं कन्यामृचीकोऽयाचतः
द्विजः। वरं विसदृशं मत्वा गाधिर्भार्गवमब्रवीत् ॥ ५ ॥
एकतः श्यामकर्णानां हयानां चन्द्रवर्चसां।
सहस्रं दीयतां शुल्कं कन्यायाः कुशिका वयम् ॥ ६ ॥
इत्युक्तस्तन्मतं ज्ञात्वा गतः स वरुणांतिकम्।
आनीय दत्वा तानश्वानुपयेमे वराननाम् ॥ ७ ॥
स ऋषिः प्रार्थितः पत्न्या श्वश्त्रा चापत्य काम्यया।
अपयित्वोभयैर्मंत्रैश्चरुं स्नातुं गतो मुनिः ॥ ८ ॥
तावत् सत्यवती मात्रा स्वचरुं याचिता सती।
श्रेष्ठंमत्वा तयाऽयच्छत् मात्रे मातुरदत्स्वयम् ॥ ९ ॥

भावार्थ— गाधिराज से सत्यवती नाम की कन्या को ऋचीक ने मांगा। इनको वयोवृद्ध जान कर गाधिराज ऋचीक

से बोले, "इस कन्या का चन्द्रवर्ण वाले व श्यामकर्ण वाले हजार अश्वों का मूल्य है। हम कुशिक-वंशी हैं इसलिये लेते हैं।" गाधिराज के इस प्रकार का अभिप्राय सुन कर वरुण देवता के पास गये। वहाँ से घोड़े माँग कर ले आये। उन्हें गाधिराज को देकर सत्यवती के साथ पाणिग्रहण किया। गाधिराज की भार्या तथा पत्नी ने ऋषि को पुत्र की इच्छा से प्रार्थना की। दोनों की प्रार्थना सुन कर दो चरुओं को जल से अभिमन्त्रित करके स्नान करने के लिये चले गये। तब सत्यवती की माता ने अपना चरु माँगा। तब सत्यवती ने अपना अभिमन्त्रित चरु श्रेष्ठ समझ कर माता को दे दिया और माता का अभिमन्त्रित चरु स्वयं पी गई।

तद विज्ञाय मुनिः प्राह पत्नीं कष्टमकारषीः।
घोरो दंडधरः पुत्रो भ्राता ते ब्रह्मवित्तमः ॥ १० ॥
प्रसादितः सत्यवत्यामेवंभूदितिः भार्गवः।
अथ तर्हि भवेत् पौत्रो जमदग्निस्ततोऽभूत् ॥ ११ ॥
सा चाभूत सुमहापुण्या कौशिकी लोक पाविनी।
रेणोः सुतां रेणुकां वै जमदग्निरुवाहयाम् ॥ १२ ॥

भावार्थ— ऋचीक ने उस बात को जान कर अपनी पत्नी से कहा कि बहुत अनिष्ट हुआ। तुम्हारे जो पुत्र होगा

दण्ड देने वाला होगा और तुम्हारा भाई ब्रह्म को जानने वालों में श्रेष्ठ होगा। सत्यवती ने ऋचीक को प्रसन्न किया और कहा कि ऐसा नहीं होना चाहिये। तब भार्गव (ऋचीक) ने कहा, "तो पौत्र होगा।" तदनन्तर जमदग्नि का जन्म हुआ। सत्यवती महापुण्य को देने वाली व लोकों को पवित्र करने वाली कौशिकी नाम की नदी हो गई। जमदग्नि का विवाह रेणु राजा की कन्या रेणुका से हुआ था।

— परशुरामजी का जन्म —

तस्यां वै भार्गवऋषेः सुता वसुमदादयः।
कनीयान् जज्ञ एतेषां राम इत्यभि विश्रुतः ॥ १३ ॥
तमाहुर्वासुदेवांशं हैहयानां कुलांतकम्।
त्रिः सप्तकृत्वो य इमां चक्रे निः क्षत्रियां महीम् ॥१४॥
दुष्टं क्षत्रं भुवोभारम ब्रह्मध्रुयम नीनशत्।
रजस्तमोवृतमहन् फल्गुन्यपि कृतेंऽहसि ॥ १५ ॥
(भाग० न० अ० १५)

भावार्थ— हे परीक्षित! उस रेणुका के गर्भ से इ ऋषि के वसुमानादि बहुत पुत्र उत्पन्न हुए। इन के सब पु से छोटे परशुराम हुए। प्राचीन कवि लोग इनको भगवा

वासुदेव का अंश और हैहय नाम क्षत्रिय-कुल का अन्त करने वाला कहते हैं। इन परशुरामजी ने पृथ्वी को इक्कीसबार क्षत्रियहीन किया था। पहले क्षत्रिय लोग रजोगुण व तमोगुण से परिपूर्ण हो घमण्डी व वेद-विरुद्ध आचरण करने वाले हुए अतः यह पृथ्वी पर भार-स्वरूप हो गये। यद्यपि इनका अपराध थोड़ा था, तौ भी परशुरामजी ने इनको मार ही डाला।

जामदग्न्योऽपि भगवान् रामः कमल लोचनः।
आगामिन्यन्तरे राजन् वर्तयिष्यति वै बृहत् ॥ २४ ॥
आस्तेऽद्यापि महेन्द्रादौन्यस्तदंडः प्रशांतधीः।
उपगीयमान् चरितः सिद्ध गंधर्वचारणैः ॥ २५ ॥

(भाग० न० स्कं० अ० १६)

भावार्थ— हे राजन्! कमल-लोचन जमदग्नि के सुत भगवान् परशुरामजी भी आगामी मन्वन्तर में वेद का प्रचार करेंगे अर्थात् वे भी वेद का प्रचार करने वाले सप्तऋषियों में से एक होंगे। वे परशुरामजी दण्ड छोड़ शान्त चित्त से अब तक महेन्द्र पर्वत पर विराजमान हैं। सिद्ध, चारण और गन्धर्वगण सदा उनके विविध चरित्र को गाया करते हैं।

— परशुराम का शब्दार्थ —

परशुराम— पु० परशुना कुठाराख्यशस्त्रेण रामः रमणं

यस्य सः। उणादिको वस्य आङ्परयोः खनिशृभ्यांडिच्च।

सूत्र से सिद्ध होता है कि इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है:—

परान् शत्रून् शृणाति हिनस्ति येन स परशुः किमधिकम्।

भृगुकुल-केतु व भृगुवंश की पताका परशुराम भृगुनाथ भृगुपति भृगुवंशियों के नाथ व पति स्वामी परशुराम परशुधर— इति श्रीधर कोषे।

अस्त्रविशेषः। १ टाङ्गी इति भाषा। तत् पर्य्यायः २ पर्शुः ३ परश्वधः ४ पर्श्वधः ५ स्वधितिः ६ कुठारः इति हेमचन्द्रः।

परशुधारी रामः शा० त० जमदग्नि जे भगवदवतार भेदे येन परशुना त्रिः सप्तकृत्वो भूमिनिः क्षत्रिया कृता।

वाचस्पति प्रमाण।

वेदः स्वस्तिर्द्रुघणः स्वस्तिः परशुर्वेदि परशुर्नः स्वस्ति।
हविष्कृतो यज्ञिया यज्ञकामास्ते देवसो यज्ञमिमं जुषन्ताम् ॥

अथर्ववेद कां ७ अ० ३ मन्त्र २८

— अथ मंत्रस्य व्याख्या —

वेद ऋगादिः। विद्यन्ते ज्ञायन्ते सर्वेभावाये नासौवेदः। नोऽस्माकं स्वस्ति कल्याणकारी (भवेत्) द्रुघणो द्रोह शीलः परशुः परशुरामो नोऽस्माकं स्वस्ति कल्याणकारी (भवेत् तथा) वेदिर्वेदिरूपः परशुः परशुरामो नोऽस्माकं स्वस्ति कल्याणकारी (भवेत्) (यथा वेद्यांस्थितेऽग्नौ प्रक्षिप्ता आहुतयः प्रक्षेपण कर्तृन् स्वर्गमयन्ति तथैव परशुरामे स्थिते क्रोधाग्नौ प्रक्षिप्ताः परुषवचनरूपा हुतयः परान् शत्रून् श्वयन्तिस्वर्गमयन्ति, इति परशोर्वेदित्वेन प्रतिपादनम् परान् शत्रून् श्वयति गमयति परलोकमिति परशुरिति व्युत्पत्तेः) (ये) हविष्कृतो हविष्कारकाः यज्ञिया यज्ञकर्तारः यजमाना इत्यर्थः (सन्तिते) नोऽस्माकं स्वस्ति कल्याणकारिणः (भवन्तु) (तथाये) यज्ञकामाः यज्ञकामो हविरादानाभिलाषो येषान्ते यज्ञकामाः, यज्ञे प्रदत्त स्वस्वभागादानाभिलाषिणः इत्यर्थः (सन्ति) ते देवासो देवा इन्द्रादय इमं प्रस्तुतं यज्ञं जुषन्ताम् प्रीत्यासेवन्ताम् प्रीत्या पूर्तिनयन्तामितिभावः।

समस्त वेदों और मन्त्रों के ऋषी व कर्ता हैं।

— श्री परशुराम का प्रभाव व महत्व —

मार्कंडेय उवाच— अथ काले व्यतीतेतु जमदग्निर्महातपाः। विदर्भराजस्य सुतां प्रयत्नेन जितां स्वयम् ॥१॥
भार्यार्थे प्रति जग्राह रेणुकां लक्षणान्विताम्।
ततस्मात् सुषुवे पुत्रान् चतुरोवेद सम्मतान् ॥ २ ॥
रुषण्वत्नं सुषेणञ्च विश्वं विश्वावसुन्तथा।
पश्चात् तस्यां स्वयं जज्ञे भगवान् मधुसूदनः ॥ ३ ॥
कार्तवीर्य्य वधायाशु शक्राद्यैः सकलैः सुरैः।
याचितः पञ्चमः सोऽभूत्तेषांरामाह्वय स्तुयः ॥ ४ ॥
भारावतारणार्थाय जातः परशुनाशह।
सहजः परशुस्तस्य न जहाति कदाचन ॥ ५ ॥
अथ निज पिता मह्यश्चरू भुक्ति विपर्ययात्।
ब्राह्मण क्षत्रियाचारो रामोऽभूत क्रूर कर्म कृत् ॥ ६ ॥
सवेदान खिलान् ज्ञात्वा धनुर्वेदांश्च सर्वशः।
स्वतातात् कृतकृत्योऽभूद्वेद विद्या विशारदः ॥ ७ ॥
इति कालिका पुराणे ८५ तमे अध्याये द्रष्टव्यम्। शब्द

कल्पद्रुमादीमानि प्रमाणानि लिखितानि । शब्दा
चिंतामणि, वाचस्पति अवशिष्टंतु पद्मोत्तर खण्डे ५
तमे अध्याये द्रष्ठव्यम् ।

भावार्थ— मारकंडेय मुनि बोले— बहुत काल बीत
पर महातपस्वी जमदग्नि का प्रयत्न से जीती हुई और सर्वगु
से सम्पन्न विदर्भराज की कन्या रेणुका से विवाह हुआ। रेणु
के पुत्र उत्पन्न हुए जो चारों वेदों के जानने वाले थे। उन
नाम इस प्रकार हैं— १ रुक्मण्वान, २ सुखेण, ३ वि
४ विश्वावसु और ५वें स्वयं भगवान् (मधुसूदन) परशुराम थे
इन्द्र को लेकर तेतीस कोटि देवताओं ने सहस्रार्जुन को मार
के लिये ईश्वर से प्रार्थना की, जिसके फलस्वरूप श्री परशुरा
जी अवतीर्ण हुए। पृथ्वी भार उतारने के लिये आप
'परशु' नामक अस्त्र के साथ जन्म लिया। उनके साथ पैद
होने के कारण 'परशु' अस्त्र श्री परशुरामजी से कभी भ
अलग न हुआ। अपने पिता व श्वसुर के लिये अभिमन्त्रि
दोनों चरुओं के परस्पर विपरीत बदल जाने से परशरामजी
ब्राह्मण होते हुए भी क्षत्रियों के समान आचरण व व्यवहा
करने वाले हुए। वे सब वेदों के रहस्य तथा धनुर्वेद के पार
दर्शी हुए। यह सब कुछ उनके पिता की कृपा का फल था
कृतकृत्य व वेदविद्या विशारद हुए।

❀ ॐ ❀

— पंचम खण्ड —

—: पितृवंश व मातृवंश :—

पितृवंश	मातृवंश
(१) ब्रह्मा	(१) ब्रह्मा
(२) भृगु	(२) कर्दम तस्य कन्या ख्याति
(३) च्यवन	(३) राजा शर्याति की कन्या
(४) और्व	(४) आरुषि नाम की मनु की कन्या थी। मनु के नाम का पता नहीं चलता है।
(५) ऋचीक	(५) गाधिराज की कन्या सत्यवती उनकी भार्या थी।
(६) जमदग्नि	(६) रेणुक नाम के राजा के रेणुका (कामली) नाम की कन्या से पाणिग्रहण हुआ था। इसके पाँच पुत्र उत्पन्न हुए। १. रुकमण्वान २.

पितृवंश	मातृवंश
	सुखेण ३. वशु ४ विश्वावसु ५. परशुराम।
(७) परशुराम	(७) लोमस कन्या शान्ता से विवाह हुआ। जयन्ता और कान्ता भी परशुरामजी की भार्या थीं। इन तीनों के सात पुत्र हुए। हमारे भाट की बही में लिखा है कि शान्ता के श्वेतक, भार्गव, गोकुल। कान्ता के रागमाल, कमुक और जयन्ता के प्रौन्ड्रक और डिगम ये सात पुत्र तीनों के हुए थे।
(८) श्वेतक	(८) सुमति भार्या थी। यह ध्रुव की बहिन थी। उसमें चार पुत्र हुए। ज्येष्ठ पुत्र का नाम वसुन्धर है। अन्य तीन पुत्रों के नाम नहीं मिलते।
(९) वसुन्धर	(९) रेचना—अग्नि की कन्या थी।

पितृवंश	मातृवंश
	इसके सात पुत्र हुए। ज्येष्ठ पुत्र का नाम चतुर्थवसु है।
(१०) चतुर्थवसु	(१०) विशालाक्षी भार्या थी। यह मांडव्य ऋषि की कन्या थी।

श्री परशुरामजी का विवाह व तत्सम्बन्धि शंका निवृत्ति

कतिपय विद्वज्जन महर्षि परशुरामजी को नैष्ठिक ब्रह्मचारी मानते हैं परन्तु उनकी यह शंका निराधार है तथा अग्राह्य है। निम्न लिखित आर्ष-ग्रन्थों के प्रमाण इस बात की पुष्टि करते हैं कि उनका विवाह हुआ था। वे भार्या सहित थे। वे प्रमाण इस प्रकार हैं:—

वैशम्पायन उवाच—

अनागताश्च सप्तैते स्मृता दिवि महर्षयः।
मनोरन्तरमासाद्य सावर्णेरिहतान शृणु॥
रामो व्यासस्तथाऽत्रेयो दीप्तिमानिति विश्रुतः।
भारद्वाजस्तथा दौणिरश्वत्थामा महाद्युतिः॥
गौतमस्यात्मजश्चैव शरद्वान्नाम गौतमः।
कौशिको गालवश्चैव रुरुः काश्यप एव च॥

एते सप्तमहात्मानो भविष्या मुनिसत्तमाः ।
ब्रह्मणः सदृशाश्चैते धन्याः सप्तर्षयः स्मृताः ॥
अभिजात्याऽथ तपसा मन्त्रव्याकरणैस्तथा ।
ब्रह्मलोक प्रतिष्ठास्तु स्मृता ब्रह्मर्षयोऽमलाः ॥
भूतभव्यभवज्ज्ञानं बुद्धाचैव च ये स्वयं ।
तपसा तु प्रसिद्धाये संगताः प्रविचिन्तकाः ॥
मन्त्र व्याकरणाद्यैश्च ऐश्वर्यात्सर्व्वशश्च ये ।
एतान् भार्यान्वितो ज्ञात्वा नैष्ठिकानि च नाम च ॥
सप्तेते सप्तभिश्चैव गुणैः सप्तर्षयः स्मृताः ।
दीर्घायुषो मन्त्रकृत ईश्वरा दीर्घचक्षुषः ॥
बुध्या प्रत्यक्षधर्म्माणो गोत्र प्रावर्त्तकास्तथा ।
कृतादिषु युगाख्येषु सर्व्वेष्वेव पुनः पुनः ॥
प्रावर्त्तयन्तिते वर्णानाश्रमांश्चैव सर्व्वशः ।
सप्तर्षयो महाभागाः सत्यधर्म्मपरायणाः ॥
तेषाञ्च वान्वयोत्पन्ना जायन्तीह पुनः पुनः ।
मन्त्र ब्राह्मणकर्त्तारो धर्म्मे प्रशिथिले तथा ॥
यस्माच्च वरदाः सप्तपरेभ्य एव याचिताः ।

तस्मान्न कालो न वयः प्रमाणमृषिभावने ॥
एते सप्तर्षिकोद्देशो व्याख्यातस्ते मया नृप ।

इति श्री महाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंश पर्व्वणि मनु वर्णने सप्तमोध्याय ॥ श्लोक ४५२ से ४६४ ॥

भावार्थ— वैशम्पायनजी बोले, "हे जन्मेजय ! सावर्णिमन्वन्तर में होने वाले सप्तमहर्षि जो कि स्वर्ग में निवास करते हैं, उनके नाम सुनो। १ राम यानि परशुराम २ वेदव्यास, ३ अत्रेय गोत्र के दीप्तिमान, ४ भारद्वाज गोत्र के द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा, ५ गौतम का पुत्र शरद्वान, ६ कौशिक गोत्र के गालव, ७ काश्यप गोत्र के रुरु— ये मुनियों में श्रेष्ठ सात महर्षि सावर्णिमन्वन्तर में होंगे। ये ब्रह्मा के सदृश सर्व गुणसम्पन्न हैं तथा प्रशंसनीय हैं। कुलीनता व तपस्वी होने के कारण मन्त्र और व्याकरण के रचयिता हैं। ये निर्मल सप्त-ऋषि ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठित व निवास करने वाले हैं। वे स्वयं ही बुद्धि से भूत, भविष्य और वर्तमान को जानने वाले, तपस्या से विख्यात, साथ रहने वाले, ब्रह्म के तत्व के जानने वाले हैं। वे सभी अपनी प्रतिभा से मन्त्र और व्याकरण के कर्त्ता हुए। वे सभी नाम से नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहे गये हैं; परन्तु इनको भार्या-युक्त जानो। ये सात मुनिगण सप्त गुणों से समन्वित होने से इनकी गणना महर्षियों में की गई है। वे सप्तगुण ये

है— १ दीर्घायु, २ मन्त्रकर्ता, ३ समर्थ, ४ दिव्यदृष्टा, ५ अगाध बुद्धि वाले, ६ प्रत्यक्ष धर्म वाले, ७ गोत्रों के चलाने वाले हैं। सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलिकाल इन सारों युगों में सब में बार-बार प्रवृत्त करते हैं। ये चारों आश्रमों व वर्णों के चलाते हैं। ये सप्तऋषि महाभाग्यशाली, सत्य और धर्म में परायण हैं। इन महर्षियों के कुल में उत्पन्न होने वाले मन्त्र व ब्राह्मणों के प्रवर्तक धर्म के शिथिल हो जाने पर बार बार जन्म लेते हैं। ये याचकों को वर देने वाले हैं। अतः ऋषि होने में न तो उम्र का कारण है और न काल का प्रमाण है। हे राजन्! मैंने तुम्हें इन सप्त महर्षियों की व्याख्या भली प्रकार से समझा दी है।

८ सावर्णिके। यथा मार्कण्डेय ८०।४।

रामो व्यासो गालवश्च दीप्तिमान कृप एव च।
ऋष्यशृङ्गस्तथा द्रोणिस्तत्र सप्तर्षयोऽभवन्॥
रामः परशुरामः द्रोणिअश्वत्थामा।

अथ च— यज्ञांते सर्व देवाश्च जग्मुस्ते स्वंस्वमालयं।
नैष्ठिकं ब्रह्मचर्य्यन्तु कृत्वा रुद्रो महातपाः॥ ६५॥
तपे गंगा तटे रुद्रः पुन्नाग तरू मूलगः।

दक्षात्मजाराती देवी त्यक्तदेहा पतिव्रता॥ ६६॥
वैशाख महात्म्य स्कंद पुराण अध्याय ८॥

भावार्थ — दक्ष के यज्ञ की समाप्ति पर देवता अपने अपने लोकों को गये। तब शंकर महातप करने के लिये नैष्ठिक ब्रह्मचर्य धारण कर तपस्या करने लगे। गंगा के तट पर शंकर पुन्नाग वृक्ष के मूल का आश्रय लेकर बैठ गये। दक्ष-कन्या सती नाम वाली देवी पिता के यज्ञ में देह को छोड़ कर पुनः हिमालय से जन्म लेकर उनकी पत्नी हुई। तभी तो इसे शैल-पुत्री के नाम से पुकारते हैं।

पाठक गण इस उदाहरण पर गम्भीर विचार करें कि योगेश्वर शिव-भार्या से युक्त होते हुए भी नैष्ठिक ब्रह्मचारी कैसे कहे गए। तदनन्तर महादेव ने शैलपुत्री से पाणिग्रहण भी किया — यह कैसे? तो क्या महर्षि स्वामी परशुरामजी के नैष्ठिक ब्रह्मचारी होते हुए भी भार्या से युक्त होना सन्देहास्पद है? कदापि नहीं। पिछले पृष्ठों में महाभारत खिलहरिवंश पर्व के श्लोक ४५८ के 'एतान् भार्यान्वितो ज्ञात्वा नैष्ठिकानि च नाम च' इस पद्यांश से यह स्वतः सिद्ध है कि ये सप्तर्षि नाम से तो नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहे गये हैं परन्तु ये भार्या से युक्त हैं। गोत्रों के चलाने वाले हैं। क्या वेदव्यास, भारद्वाज

इत्यादि महर्षियों के सन्तान नहीं हुई ? क्या ये भार्या-युक्त नहीं थे ? तो फिर स्वामी परशुरामजी को निःसन्तान समझना निराधार तथा एक अपवाद मात्र है। इस प्रकार के और भी अकाटय प्रमाण आपकी शंका निवृत्ति के लिए नीचे लिखते हैं-

व्यासपुत्रो महाशांशः शुकश्च ज्ञानिनांवरः ।
पञ्चसन्ततयो जाताः शुकस्य वंशविस्तरे ॥ २७ ॥
ब्राह्मणानामयं वंशः कथितो विस्तरेण च ।
श्री व्यासेन पुराणेषु द्रष्टव्यस्तत्र ब्राह्मणैः ॥ २८ ॥

भावार्थ— व्यास का पुत्र, शिव का अंश, ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ श्री शुकदेवजी के चार पुत्र और एक पुत्री कुल पाँच संतान हुई। इन उपरोक्त ऋषि-ब्राह्मणों का वंश महात्मा श्री वेद-व्यासजी ने भागवत आदि पुराणों में सविस्तार वर्णन किया है। अतः ब्राह्मणों को वहाँ देखना चाहिए।

हाँ तो, श्री शुकदेवजी तो नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहे जाते हैं। उनके सन्तान कैसे हुई ? इसी प्रकार व्यासजी के दृष्टिपात से धृतराष्ट्र, पांडु और विदुर का जन्म हुआ। यह कैसे ? तीसरे अञ्जनी-पुत्र हनुमान को नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहते हैं। और साथ ही साथ मकरध्वज को भी उनकी सन्तान स्वीकार करते हैं। विशिष्ठ ज्ञान के लिए रामायण का अवलोकन कीजिये।

तो इन विभिन्न विचारों का सामंजस्य कैसा ? क्या ये सब विचार अपवाद मात्र हैं ? कदापि नहीं। अब श्री परशुरामजी को भार्यायुक्त होते हुए भी वंश प्रवर्तक न मानना तो निरी हठधर्मी है। इन्होंने कई अश्वमेध यज्ञ करके कश्यपादि महर्षियों को पृथ्वी का दान दिया। इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि वे भार्यायुक्त थे क्योंकि बिना भार्या के अश्वमेध यज्ञ नहीं होता है।

अथ च—

सूत उवाच— एवमुक्त्वा कुमारास्ते नारदेन समं ततः ।
गंगातटं समाजग्मु कथापानाय सत्वराः ॥ १० ॥
यदा यातास्तटं ते तु तदा कोलाहलोऽप्यभूत ।
भूर्लोके देवलोके च ब्रह्मलोके तथैवच ॥ ११ ॥
श्री भागवत पीयूषपानाय रस लंपटाः ।
धावन्तोप्याऽऽययुः सर्वे प्रथमं ये च वैष्णवाः ॥ १२ ॥
भृगुर्वसिष्ठश्च्यवनश्च गौतमोमेधातिथिर्देवलदेवरातौ ।
रामस्तथा गाधिसुतश्च शाकलो मृकंडपुत्राऽत्रिजपिप्प-
लादाः ॥ १३ ॥ योगेश्वरा व्यासपराशरौच छायाशुको
जाजलिजन्हुमुख्याः । सर्वेऽप्यमी मुनिगणाः सहपुत्र

शिष्याः स्वस्त्रीभिरायपुरति प्रणयेन युक्ताः ॥ १४ ॥
श्री पद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्री भागवत मा० कुमार नारद संवादो नाम तृतीयोध्यायः ॥

भावार्थ— सूतजी बोले, "तदनन्तर सनकादिक कुमार नारद को ऐसा कह कर और उनको साथ लेकर शीघ्र कथा सुनने के लिये गंगा के तीर पर आये। जब वे गंगा के तीर पर गये तब तीनों लोकों में बड़ा कोलाहल हुआ। श्रीभागवतामृत पान करने के लिये इच्छुक वे सभी दौड़ते हुए आये। जो वैष्णव थे वे प्रथम आये। वे वैष्णव ये थे— भृगु, वसिष्ठ, च्यवन, गौतम, मेधातिथि, देवल, देवरात, राम (परशुराम) विश्वामित्र, शाकल, मार्कंडेय, अत्रिज और पिप्पलाद। व्यास पराशर, छायाशुक, जाजली और जन्हु ये सभी मुख्य मुख्य योगेश्वर भी पधारे। विनम्र ये सभी (वैष्णव और योगेश्वर) मुनिगण अपनी स्त्रियों, पुत्रों व शिष्यों सहित वहाँ आये।

इस प्रमाण से यह सिद्ध है कि वैष्णव श्री परशुराम अपनी भार्या, पुत्र व शिष्यों के साथ कथा श्रवण करने के लिये आये थे।

इन उपरोक्त आर्ष ग्रन्थों के प्रमाणों के अतिरिक्त एक ज्वलन्त व प्रत्यक्ष अकाट्य प्रमाण आपके समक्ष रक्खा जाता है।

— श्री परशुराम का विशाल मन्दिर —

थोड़े ही वर्षों की बात है कि मेरे स्वर्गीय ज्येष्ठ पुत्र श्रीयुक्त गंगादास ने 'जाति-खोज' के उद्देश्य से बंगालप्रान्त की ओर देशाटन किया था। वह ढाका नगर जो बंगालप्रान्त के अन्तर्गत है पहुँच कर इस विषय पर पूरी खोज की और अपने अभिलाषित ध्येय की पूर्ति में सफलीभूत भी हुआ। उस ने अपनी खोज का जो विस्तृत विवरण लिखा था उसकी संक्षिप्त रूप-रेखा इस प्रकार है। आप सहृदय होकर मनन करें।

"इस ढाके नगर में तथा अन्यान्य निकटवर्ती गांवों में सब मिला कर श्री परशुवंशीय गौड़-ब्राह्मणों के करीब ५०० घर हैं। मैं वहाँ श्री वासचन्द्र बनर्जी के यहीं ठहरा था। आप एक उच्च घराने के प्रतिष्ठित और माननीय महानुभाव हैं। होनहार एवं सहृदय व्यक्ति हैं। आपके श्री परशुरामजी का मन्दिर भी है। मन्दिर बहुत ही विशाल व प्रसिद्ध है। मन्दिर में तीन मूर्तियाँ हैं— १ श्री परशुराम, २ शांतक (पुत्र), ३ शान्ता (भार्या) जो कि लोमस ऋषि की कन्या है। मन्दिर में पाठ-पूजन के लिए करीब १०० पण्डित काम करते हैं। मन्दिर का वार्षिक खर्च ६०,०००) रुपयों के लगभग है।"

"मैंने वहाँ के पण्डितों से श्री परशुरामजी के भार्या-

युक्त होने के बारे में शंका उत्पन्न की। इस पर उन्होंने ब्रह्म-वैवर्तपुराण उत्पत्ति खण्ड अध्याय १६६ लाकर दिखलाया। वंश का वर्णन लक्ष्मी और भगवान के संवाद के रूप में किया गया है। संक्षेप में ब्रह्मा से भृगु, भृगु से च्यवन, च्यवन से और्व्व, और्व्व से ऋचीक, ऋचीक से जमदग्नि, जमदग्नि से श्री परशुराम हुए। लोमस ऋषि की कन्या शान्ता से श्री परशुराम जी का विवाह हुआ था। सर्व प्रथम श्री परशुरामजी ने विवाह करने से इन्कार कर दिया था। अतः लोमस की कन्या ने हिमालय पर्वत पर जाकर घोर तपस्या की। उसकी इस अविचल तपस्या से प्रसन्न होकर इन्द्रादिक देवता विष्णु भगवान व ब्रह्मा को लेकर हिमालय पर्वत पर शान्ता के पास आये। वहां से शान्ता को लेकर वे महेन्द्र पर्वत पर श्री परशुरामजी के पास गए। बहुत अनुनय-विनय करने के पश्चात् श्री परशुरामजी व्याह करने को राजी हुए और शान्ता के साथ विवाह हुआ। शान्ता से उनके श्रोतक नाम का पुत्र हुआ। श्रोतक की सुमति नाम की भार्या थी। यह ध्रुवजी की बहिन थी। इसके गर्भ से चार पुत्र हुए। ज्येष्ठ पुत्र का नाम वसुन्धर था। वसुन्धर का पाणिग्रहण रेचना से हुआ था। यह अग्नि की कन्या थी, अग्नि के मुख से प्रकट हुई थी। इसके सात पुत्र हुए थे। ज्येष्ठ पुत्र का नाम चतुर्थवसु था। इस

प्रकार क्रमबद्ध वंश-परम्परा लिखी हुई है। द्रोणाचार्य और कृपाचार्य इत्यादि महारथियों ने इसी वंश में जन्म लिया था। ब्रह्मवैवर्तपुराण उत्पत्ति खण्ड में वंश-वर्णन अध्याय १३६ से १४४ तक किया है। बाकी १४५-१४६ अध्याय तक अस्त्र-शस्त्र विद्या, बाण-विद्या, शिल्प-विद्या का विशुद्ध वर्णन है जो श्री परशुरामजी ने अपने पुत्र श्रोतक को सिखलाई थी। लेकिन खेद है कि यह सरकार द्वारा जब्त है। यह पुराण बंगला भाषा में लिखा हुआ है। यह हस्तलिखित ग्रन्थ है, अतः अप्राप्य है। अभी तक छपा नहीं। उत्पत्ति खण्ड में वंश-वर्णन के अध्याय सुरक्षित हैं।"

पाठकगण! प्रतिपाद्य-विषय की परिपुष्टि करने के लिये तथा निर्मूल और निराधार शंकाओं के निवारण के हेतु इससे बढ़ कर लिखना मेरी लेखनी की सामर्थ्य के परे है। आर्ष-ग्रन्थों के अकाट्य प्रमाणों व प्रत्यक्ष घटनाओं की अवहेलना कर अपनी पर ही तुले रहना तो निरी उद्दण्डता-मात्र है। "प्रत्यक्षं किं प्रमाणं" के आधार पर मैं इस विषय को समाप्त कर हमारी जाति में प्रचलित गोत्र, प्रवर, शाखा इत्यादि वर्णन करूँगा।

— इति पञ्चम खण्डम् —

❀ ॐ ❀

— षष्ठम खण्ड —

अब आद्योपान्त ग्रन्थकर्ता श्री परासर गोत्रोत्पन्न खेरीवाल शाखान्तर्गत गणेशराम आदिगौड़ावंतंश **श्री परशुराम वंश दर्शन** ग्रन्थ में श्रीमद्भृगुकुलोत्पन्न परशु-राम-वंशीय सज्जनों को गोत्र, प्रवर, शाखादि का वर्णन करता है।

—: गोत्र निर्णय :—

श्रुति— गोत्राण्यर्बुदानिच— गोत्र अर्बों हैं।

मुख्य मुख्य गोत्रों का विशद् वर्णन मैं पहिले ही कर चुका हूँ। देखिये द्वितीय खण्ड! अन्य सब ऋषि गोत्र-गण कहे हैं। इस प्रकार ३०० गौत्र और सहस्रों प्रवर हैं। सात प्रह-सूत्र हैं। इसी के फल-स्वरूप भारतवर्ष में दो सहस्र जाति हैं।

मनु— वसिष्ठः कश्यपोत्रिश्च शांडिल्यो वत्स एव च।
सावर्णको भरद्वाजः सौकालीनश्च गौतमः॥

वसिष्ठ, कश्यप, अत्रि, शांडिल्य, वत्स, सावर्णी,

भारद्वाज, सौकालीन, गौतम, कल्पिष, अग्निवेश्य, मुद्गल, पराशर, कुशिक, कौशिक, विश्वामित्र, वासुकी, सौपायन, चित्र, कृष्णात्रेय, रोहित, व्याघ्रपाद, हारीत, जमदग्नि ये २४ मुख्य २ गोत्र मनुस्मृति में वर्णन किये गये हैं। इनकी सन्तान भी गोत्र कहलाती है। विस्तार भय से श्लोक नहीं लिखे हैं।

गोत्राभावेऽस्मरणाच्च काश्यपं गोत्रम्।
गोत्राभावेतु काश्यपमिति हेमाद्रौ व्याघ्रोक्तेः॥
सर्वाः प्रजा काश्यप इति श्रुतेश्च।

यानि गोत्र के अभाव तथा विस्मरण में काश्यप गोत्र मान लेना चाहिये। यह हेमाद्रि में व्याघ्र मुनि के कथन से और सब प्रजा काश्यप है। इस श्रुति से गोत्र के अभाव में काश्यप गोत्र ही मानने योग्य है।

* * *

१– परासर गोत्र

प्रचलित शाखा संख्या	शाखा	प्रवर	उपाधि	
१	खेरीवाल व्यास नगरिया करनालिया धर्म प्रस्थिया	(१) पराशर (२) शक्तिः (३) वसिष्ठ	व्यास	यजुर्वेद, धनुर्वेद उपवेद, कात्यायन सूत्र, माध्यन्दिनी शाखा, दाहिनी शिखा, दाहिना पाद, शिव देवता।

२– भरद्वाज गोत्र

२ ३ ४ ५ ६	अड़ीचवाल मंडन या मांडोठिया बींवाल ढकवाल (ढकैया) जायलवाल	(१) अङ्गिरा (२) वृहस्पति (३) वार्हस्पत्य	तिवाड़ी	यजुर्वेद, धनुर्वेद, उपवेद, माध्यन्दिनी शाखा, कात्यायन सूत्र, दक्षिण शिखा, दक्षिण पाद, शिव देवता।

३– कत्यायन गोत्र

प्रचलित शाखा संख्या	शाखा	प्रवर	उपाधि	
७	कुलीचवाल, कमल-पुरिया या कमलिया या कमल ऋचा सोनिया मधुपुरिया बुढाणिया विजयाशना	(१) अत्रि (२) भृगु (३) वसिष्ठ	प्रधान	यजुर्वेद, धनुर्वेद, उपवेद कात्यायन सूत्र, माध्यन्दिनी शाखा, दाहिनी शिखा, दाहिना पाद, शिव देवता।

४– कौशिक गोत्र

८ ९ १०	नूणीवाल सींवाल नन्दोरिया	(१) कौशिक (२) अत्रि (३) जमदग्नि	पचोली	यजुर्वेद, धनुर्वेद, उपवेद, माध्यन्दिनी शाखा, कात्यायन सूत्र, दक्षिण शिखा, दक्षिण

७– अत्रि गोत्र

प्रचलित शाखा संस्था	शाखा	प्रवर	उपाधि	
२३	मोटा मिश्र मामड़ोलिया धर्मपाल कैथलिया रामस्थली	(१) आत्रेय (२) आर्चनानस (३) श्यावाश्व	मिश्र	यजुर्वेद, धनुर्वेद, उपवेद माध्यान्दिनी शाखा, कात्यायन सूत्र, दाहिनी शिखा, दाहिना पाद, शिव देवता।

८– विश्वामित्र गोत्र

२४	राजोरथा या रजोधर शंकरा तपोधरा राजपुरिया	(१) वैश्वामित्र (२) मरीचि (३) कौशिक	ठाकुर	यजुर्वेद, धनुर्वेद, उपवेद माध्यान्दिनी शाखा, कात्यायन सूत्र, दाहिनी शिखा, दाहिना पाद, शिव देवता।

९– गौतम गोत्र

प्रचलित शाखा संस्था	शाखा	प्रवर	उपाधि	
२५	नाराणिया या निर्वाणिया	(१) आंगिरस (२) अप्सर	पुरोहित	यजुर्वेद, धनुर्वेद, उपवेद कात्यायन सूत्र, माध्यन्दिनी शाखा, दाहिनी शिखा, दाहिना पाद, शिव देवता।
२६	पाटीवाल, पटोदिया या पन्नीवाल	(३) गौतम (४) बार्हस्पत्य		
२७	इन्दोरिया नौताणिया दोहलिया, चरवाल दोरलिया	(५) नैध्रुव		

१०– क्रतु गोत्र

२८	ब्राह्मणिया, ब्राह्मणोलिया	(१) आगस्त्य (२) माहेन्द्र	जोशी	यजुर्वेद, धनुर्वेद, उपवेद, माध्यन्दिनी शाखा, कात्यायन

प्रचलित शाखा संख्या	शाखा	प्रवर	उपाधि	
	लुहाणिया गौड़पुरिया	(३) मायोभुव		सूत्र, दाहिनी शिखा, दाहिना पाद, शिव देवता।

११– अङ्गिरा गोत्र

प्रचलित शाखा संख्या	शाखा	प्रवर	उपाधि	
२६ ३०	चूलीवाल कासनीवाल, कोसवाल या कौसीवाल तपोधनिया बांकोलिया थनेसरिया	(१) आंगिरस (२) वसिष्ठ (३) बार्हस्पत्य	जोशी या प्रधान	यजुर्वेद, धनुर्वेद उपवेद, कात्यायन सूत्र, माध्यन्दिनी शाखा, दाहिनी शिखा, दाहिना पाद, शिव देवता।

१२– उद्दालक गोत्र

प्रचलित शाखा संख्या	शाखा	प्रवर	उपाधि	
३१	उद्दलिया नाशकेता	(१) आत्रेय (२) आर्चनानस (३) श्यावाश्व	मिश्र	यजुर्वेद, धनुर्वेद, उपवेद माध्यान्दिनी शाखा, कात्यायन सूत्र, दाहिनी शिखा, दाहिना पाद, शिव देवता।

१३– आलम्पायन गोत्र

प्रचलित शाखा संख्या	शाखा	प्रवर	उपाधि	
३२	आपेवाल या आसोधिया संभालकिया, बल- भिया, जटावरा, कामीवाल	(१) कुशिक (२) कौशिक (३) वँधुल	मिश्र	यजुर्वेद, धनुर्वेद, उपवेद माध्यान्दिनी शाखा, कात्यायन सूत्र, दाहिनी शिखा, दाहिना पाद, शिव देवता।

१४– वत्स गोत्र

प्रचलित शाखा संख्या	शाखा	प्रवर	उपाधि	
३३	धामा, धम्मीवाल धमाणिया झामरिया कामीवाल या बदरवाल	(१) और्व (२) च्यावन (३ भार्गव (४) जामदग्न्य (५) आप्नवान	मिश्र या पांडे	यजुर्वेद, धनुर्वेद, उपवेद माध्यान्दिनी शाखा, कात्यायन सूत्र, दाहिनी शिखा, दाहिना पाद, शिव देवता।

१५– पाराशर गोत्र

प्रचलित शाखा संख्या	शाखा	प्रवर	उपाधि	
३४ ३५	खंडेद्वाल या खेड़वाल दिहिमा या दम्मीवाल कुरुक्षेत्री श्यामतीर्थिया या प्रस्थिया	(१) वसिष्ठ (२) शाक्त्य (३) पाराशर्य	जोशी या पुरोहित	यजुर्वेद, धनुर्वेद, उपवेद माध्यान्दिनी शाखा, कात्यायन सूत्र, दाहिनी शिखा, दाहिना पाद, शिव देवता।

प्रचलित शाखा संख्या	शाखा	प्रवर	उपाधि	
	ब्योंहाल, बवाणिया			

१६– पुलस्त्य गोत्र

प्रचलित शाखा संख्या	शाखा	प्रवर	उपाधि	
३६	गोपाल या गोपाल पानीपतिया महोदयापुरिया कहसियाँ	(१) अगस्त्य (२) माहेन्द्र (३) मायोभुव	जोशी	यजुर्वेद, धनुर्वेद, उपवेद माध्यान्दिनी शाखा, कात्यायन सूत्र, दाहिनी शिखा, दाहिना पाद, शिव देवता।

१७– भारद्वाज गोत्र

प्रचलित शाखा संख्या	शाखा	प्रवर	उपाधि	
३७	पल्हेड़िया या पतड़िया पाटणिया रामगढ़िया पाऊँडा	(१) आंगिरस (२) बार्हस्पत्य (३) भारद्वाज (४) मौदल्य	पांडे	यजुर्वेद, धनुर्वेद उपवेद माध्यान्दिनी शाखा, कात्यायन सूत्र, दाहिनी शिखा, दाहिना पाद, शिव देवता।

प्रचलित शाखा संख्या	शाखा	प्रवर	उपाधि	
	इन्द्रप्रस्थिया	(५) शैशिर		

१८– सौपर्ण गोत्र

३८ ३९ ४०	बड़ोदिया बड़ीवाल बांकड़ीवाल पीयाण्या, पाटणिया या पुराणिया	(१) सौपर्ण	पाठक	यजुर्वेद, धनुर्वेद उपवेद, कात्यायन सूत्र, माध्यन्दिनी शाखा, दाहिनी शिखा, दाहिना पाद, शिव देवता।

१९– मुद्गल गोत्र

४१	रोहटिया या रोहितिया परधानिया मकड़ोलिया पालिया	(१) और्व (२) च्यावन (३) भार्गव (४) जमदग्नि	दीक्षित	यजुर्वेद, धनुर्वेद, उपवेद, माध्यन्दिनी शाखा, कात्यायन सूत्र, दाहिनी शिखा, दाहिना पाद, शिव देवता।

प्रचलित शाखा संख्या	शाखा	प्रवर	उपाधि	
	सिद्धपुरिया	(५) आप्नवान		

२०– कश्यप गोत्र

४२ ४३	ढेरवाल (डेरोल्या) सींगवाल समनवाल या सीमनवाल गढेल	(१) काश्यप (२) आवत्सार (३) रैक्य	मिश्र	सामवेद, गांधर्ववेद, उपवेद कौथुमी शाखा, गोभिल सूत्र, वाम शिखा, वाम पाद, विष्णु देवता।

२१– सुपर्ण गोत्र

४४	ढकवाल या गढ़वाल विष्णुथलिया गारड़ू	(१) सौपर्ण	उपाध्याय	यजुर्वेद, धनुर्वेद, उपवेद कात्यायन सूत्र, माध्यन्दिनी शाखा, दाहिनी शिखा, दाहिना पाद, शिव देवता।

२२– हारीत गोत्र

प्रचलित शाखा संख्या	शाखा	प्रवर	उपाधि	
४५	मिसुद्धवाल या बेढ़वाल गंगातटिया व्यासस्थली कारणूडिया	(१) वसिष्ठ	तिवाड़ी	यजुर्वेद, धनुर्वेद, उपवेद माध्यान्दिनी शाखा, कात्यायन सूत्र, दाहिनी शिखा, दाहिना पाद, शिव देवता।

२३– काश्यप गोत्र

४६	सहजवाल या सहजपल	(१) काश्यप (२) आवत्सार (३) नैध्रुव	पांडे	सामवेद, गांधर्ववेद, उपवेद, कौथुमी शाखा, गोभिल सूत्र, वाम शिखा, वाम पाद, विष्णु देवता।
४७	देमण या दम्मण			
४८	बियाला, सोढ़वाल			
४९	भेराण्या भोराण्या)			

प्रचलित शाखा संख्या	शाखा	प्रवर	उपाधि	
	मीरपुरिया			

२४– अगस्त्य गोत्र

५०	राणंगा या रेणवाल जोधपुरिया शुक्रपुरिया पीहूवाल उच्छला तपोधरा	(१) आगस्त्य (२) माहेन्द्र (३) मायोभुव	मिश्र	यजुर्वेद, धनुर्वेद, उपवेद, माध्यान्दिनी शाखा, कात्यायन सूत्र, दाहिनी शिखा, दाहिना पाद, शिव देवता।

पाठक महोदय ! प्रत्येक गोत्र के नियमानुसार पन्द्रह भेद होते हैं। विस्तार-भय से उनको यहाँ एक साथ लिखा जाता है। वे ये हैं। निम्न लिखित श्लोक से सब बात स्पष्ट हो जायगी: —

वेदः क्रियासु सम्बन्धो भूमिरग्नि समन्वितः।
क्षमा सत्यं तपश्चेति अष्टांग कुलमुच्यते ॥

भावार्थ— वेद, क्रिया, सम्बन्ध, भूमि, अग्नि, क्षमा, सत्य और तप ये आठ अङ्ग कुल के कहे गये हैं।

गोत्र प्रवर सूत्राणि वेदोपवेद शाखिकाम्।
शिखां पादं च देवं च नव तत्र वदाम्यहम् ॥

भावार्थ— गोत्र, प्रवर, सूत्र, वेद, उपवेद, शाखा, शिखा, पाद और देवता ये नव अग कुल के कहीं कहीं कहे गये हैं।

गोत्रवेदोपवेदश्च शाखां प्रवर आस्पदम्।
सूत्रावटंक देवश्च देवीयक्षो गणेश्वरः ॥
शिखापादंश्च ज्ञातिश्च पंचदशवंशवाडवाः।

(ब्रह्म पुराण)

भावार्थ— १ गोत्र, २ वेद, ३ उपवेद, ४ शाखा, ५ प्रवर, ६ आस्पद, (अल्ल) ७ सूत्र, ८ अवटंक, (उपगोत्र, शाशन, निकाश) ९ देवता, १० देवी, ११ यक्ष, १२ गणपति १३ शिखा, १४ पाद, १५ ज्ञाति। ये १५ भेद होते हैं। प्रत्येक जाति-बन्धु को ये बातें याद रखनी चाहिये।

विस्तृत ज्ञान के लिये 'आदि गौड़ उत्पत्ति' चतुर्थ भाग का पूर्ण रूप से अवलोकन करें। सब स्पष्ट हो जायगा।

❀ इति षष्ठम खण्ड ❀

❀ ॐ ❀

— सप्तम खण्ड —

अथ षोडश संस्काराः

गर्भाधानं तु प्रथमं ततः पुंसवनंस्मृतम् ।
सीमंतोन्नयनं चापि जात कर्म ततः परम् ॥
ततः स्यान्नाम करणं शिशो निष्क्रमणं ततः ।
अन्न प्राशन मुद्दिष्टं चूड़ाकर्म्म ततः परम् ॥
कर्ण वेधस्ततः प्रोक्तो यज्ञसूत्रक्रियास्ततः ।
ब्रह्मचर्य्यं समाप्याथ समावर्तन मिष्यते ॥
विवाहश्च ततः ख्यातो वानप्रस्थस्तत स्मृतः ।
संन्यासग्रहणं प्रोक्तमन्त्येष्टि विदुः परे ॥
इतिषोड़श संस्कारा द्विजानां वैदिके स्मृताः ।
तैर्विहीनो भवेद्व्रात्यो गर्हितः सर्व कर्मसु ॥

भावार्थ— १ गर्भाधान, २ पुंसवन, ३ सीमन्तोन्नयन, ४ जातकर्म, ५ नामकरण, ६ निष्क्रमण, ७ अन्नप्राशन, ८ चूड़ाकरण, ९ कर्णवेध, १० उपनयन या

यज्ञोपवित संस्कार (११) वेदारंभ (१२) समावर्तन (१३) विवाह (१४) वानप्रस्थ (१५) सन्यास और (१६) अंत्येष्टि संस्कार है ये ही सोलह संस्कार हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वेश्यों के वेदों में लिखित मंत्रों से किये जाते हैं और जिनके ये सब संस्कार यथा समय नहीं होते उनको व्रात्य कहते हैं। सब सनातनोचित कर्मों से पतित हो जाते हैं। अतएव सब द्विजातियों को उचित है कि शास्त्रों में लिखित ठीक समय पर इन सस्कारों को करें,

गर्भाधान मृतौ पुंसः सवनस्यन्दनात्पुरा ।
षष्टेऽष्टमे वा सीमन्तो मास्येते जात कर्म्म च ॥
अहन्येकादशेनाम चतुर्थेमासिनिष्क्रमः ।
षष्टेऽन्नप्राशनं मासि चूडा कार्य्या यथाकुलम् ॥
(याज्ञवल्क्य स्मृति)

(१) गर्भाधान

सबसे प्रथम गर्भाधान संस्कार है वह ऋतुकाल में होना चाहिये। क्योंकि—

ऋतुकालाभिगामी स्यात्स्वदारनिरतः सदा ।
पर्ववर्जं व्रजेच्चैनां तद्व्रतो रति काम्यया ॥

अर्थात् पुरुष अपनी स्त्री के समीप ऋतुकाल में पर्व के दिन त्याग कर जाय।

(२) पुंसवन संस्कार

"पुंसः सवनंस्यन्दनात्पुरा" याज्ञवल्क्य स्मृति के नियम पुंसवन का समय यह है कि गर्भ के पकने से पहले पुंसवन संस्कार होना चाहिये।

चतुर्थेसर्वाङ्गप्रत्यंग विभागः प्रव्यक्ततरो भवति।
गर्भहृदयप्रव्यक्त तराच्चेतना धातुरभिव्यक्तो भवति॥

अर्थात् चौथे महीने में गर्भ के सब अंग और प्रत्यंग अलग हो जाते हैं और हृदय भी उन ही अंग प्रत्यंगों में है तथा वह ही हृदय चेतना मुख्य स्थान है अतएव चेतना भी चोथे महीने में गर्भ में आजाती है। इससे सिद्ध होगया कि गर्भ फड़कने की शक्ति चौथे महीने में आती है और पुंसवन का समय फड़कने से पूर्व कहा गया। अतएव तीसरे महीने में पुंसवन संस्कार करना उचित है। दूसरे और तीसरे महीने में भी पुंसवन की विधि है।

उक्त महीनों में जब पुंसवन का दिन स्थिर हो उसी दिन गर्भिणी को बट के शुङ्ग पीस कर उनका अर्क निकाल कर दाहिनी नाक से सुंघावें।

(३) सीमन्तोन्नयन संस्कार

सीमन्त केश समूह या जूड़ा अथवा चोटी को कहते हैं उसका उन्नयन अथवा ऊँचा करके बांधना यह संस्कार गर्भ से छठे अथवा सातवें मास में होता है। इसका मुहुर्त उस दिन होता है जिस दिन चन्द्रमा पुरुष नक्षत्र से युक्त हो।

(४) जात कर्म्म संस्कार

जात कर्म उस संस्कार को कहते हैं जो बालक के उत्पन्न होने पर किया जाता है।

(५) नामकर्ण संस्कार

अहन्येकादशेनाम॥ याज्ञ० अ० १ श्लो० १२

नामकरण संस्कार जन्म से दशवें दिन किया जाता है उस दिन उस विधान में लिखी हवन करके पिता, पुत्र वा पुत्री का नाम करे।

(६) निष्क्रमण संस्कार

चतुर्थेमसि निष्क्रमः

निष्क्रमण संस्कार जन्म से चौथे मास में होता है।

(७) अन्न प्राशन संस्कार

षष्ठेऽन्न प्राशनमसि । अर्थात् अन्नप्राशन संस्कार जन्म से छठे महीने होता है। उस दिन हवन आदि करके बालक को घी और मधु मिला कर साठी चावल का भात चटावे।

(८) चूड़ाकरण संस्कार

प्रथमेऽथ तृतीये वा पंचमे वत्सरेऽथवा ।
चूड़ा कार्य्या शिशोः तत्र कुलदेश विधानतः ॥

अर्थात् चूड़ा कर्म्म संस्कार जन्म से पहले वा तीसरे अथवा पाँचवें वर्ष में होता है। उक्त तीनों समयों में से जैसा देश और वंश का नियम हो उसी समय करे।

(९) कर्णवेध संस्कार

"रक्षा भूषण निमितं बालस्य कर्णौ विधयेते" यह शुश्रुताचार्य का वचन है अर्थात् रक्षा और भूषण के लिये बालक का कर्ण वेध संस्कार किया जाता है। इसके टीके से लिखा है कि "रक्षा चक्षुषः" अथवा कर्ण वेधने से नेत्रों की रक्षा होती है। कर्णवेध संस्कार का समय जन्म से तीसरे अथवा पाँचवें वर्ष है।

(१०) उपनयन संस्कार

गर्भाष्टमेऽष्टमे वाब्दे ब्राह्मणस्योपनायनम् ।
राज्ञामेकादशे सैके विशामेके यथा कुलम् ॥

अर्थात् गर्भ से अथवा जन्म से आठवें वर्ष ब्राह्मण का ग्यारहवें में क्षत्रिय का और बारहवें वर्ष वैश्य का उपनयन करे।

एक और भी उपनयन समय मनुजी ने अपनी स्मृति में लिखा है अर्थात् सोलह वर्ष तक ब्राह्मण की, बाईस वर्ष तक क्षत्रिय की और चौबीस वर्ष तक वैश्य की। सावित्री का समय नष्ट नहीं होता अर्थात् उपनयन संस्कार का अन्तिम समय यह ही है।

याज्ञवल्क्य महर्षि भी यही कहते हैं कि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों की सावित्री का समय क्रमशः सोलह, बाईस और चोबीस वर्ष है। इसके पश्चात् ये तीनों सावित्री से पतित हो जाने के कारण व्रात्य कहाते हैं और सब धर्मों से च्युत हो जाते हैं। किन्तु यदि उस समय भी व्रात्य सोम नामक यज्ञ किया जाय तो इनको इस समय के बीतने पर भी उपनयन का अधिकार हो सकता है। यह समय सावित्री का उसी समय के लिए है कि जो पूर्वोक्त समय समय पर किसी

आपद के कारण जनेउ न हो सके अर्थात् यथार्थ समय पहला ही है और यह आपद् धर्म है।

(११) वेदारम्भ संस्कार

यज्ञो पवित होने के पश्चात वेदारंभ संस्कार उस ही दिन होता है और यदि किसी विशेष कारण से उस दिन न हो सके तो उस ही वर्ष में अवश्य हो।

(१२) समावर्तन संस्कार

यह संस्कार वेद पढ़ने के समय पूर्ण रीति से ब्रह्मचर्य पालन करने के पश्चात् गुरु दक्षिणा देकर किया जाता है। समावर्तन का अर्थ है लौटना। जब ब्रह्मचारी अपने पिता का ब्रह्मदाय (वेदों का भाग) लेने योग्य हो जाय अर्थात् वेदों को पढ़ चुके तब उसके घर पर आजाने पर पिता उसको फूलों की माला पहना कर और पलंग पर बैठा कर पहले गौ से पूजा करे अर्थात् उसको गौ देवे कि जिसका दूध पीने से गुरुकुल में किये वेदाध्ययनादि का परिश्रम दूर हो कर उसका शरीर पुष्ट हो जाय।

(१३) विवाह संस्कार

वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथा विधि।
अविप्लुत ब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रम मावसेत् ॥ मनु० ॥

भावार्थ— विधि पूर्वक चारों अथवा दो या एक ही वेद पढ़ कर और ब्रह्मचर्य को यथायोग्य पाल कर गृहाश्रम में आवे अर्थात् विवाह करे।

गुरुणानुमतः स्नात्वा समावृतो यथाविधि।
उद्वहेतद्विजो भार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम् ॥

असपिण्डाच या मातु रसगोत्रच या पितुः।
सा प्रशस्ता द्विजातिनां दारकर्मणि मैथुने ॥ मनु ॥

भावार्थ— वेदाध्ययन के पश्चात् गुरु दक्षिणा देकर गुरु की आज्ञा से स्नान करे फिर सवर्णा अर्थात् वर्ण में उत्पन्न हुई लक्षवति माता की छै पीढ़ियों को छोड़ कर और पिता के गोत्र को त्याग कर अन्य गोत्र में उत्पन्न हुई कन्या से विवाह करे।

ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथासुर।
गांधर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः ॥ मनु० ॥

भावार्थ— (१) ब्राह्म, (२) देव, (३) आर्ष (४) प्राजापत्य (५) आसुर (६) गान्धर्व (७) राक्षस (८) पैशाच। यह आठ प्रकार के विवाह होते हैं।

ब्राह्मो विवरह आहूय दीयतेशक्त्यलंकृता ।
यज्ञस्थ ऋत्विजे दैव आर्ष आदाय गोद्वयम् ॥
इत्युक्त्वा चरतान्धर्मसह या दीयतेऽर्थिन ।
सकायः पावयेत्तज्जः षट् षट् वंश्यान्सहात्मना ॥
आसुरो द्रविणादानाद् गंधर्वः समयान्मिथः ।
राक्षसो युद्धहरणा त्पैशाचः कन्यका छलात् ॥
॥ य० अ० १ श्लो० चन्द १ ॥

भावार्थ— जिसमें वर को बुला कर कन्या का पिता यथाशक्ति अलंकारादि देकर कन्यादान करे वह ब्राह्म, यज्ञ करके ऋत्विक के सन्मुख कन्यादान दें वे, एक गौ और एक बैल वर से लेकर जो विवाह हो उसे आर्ष, वर के मांगने पर तुम दोनों धर्माचरण करो यह कह कर कन्यादान देना काय (प्राजापत्य), वर से धन लेकर कन्यादान आसुर, कन्या और वर के परस्पर इच्छा से गांधर्व, कन्या को युद्ध में जीतकर विवाह करना राक्षस, और कन्या को छलकर अर्थात् सोई हुई उन्मत्त या प्रमत्त कन्या को ले आना पैशाच विवाह कहाजाता है

इन आठों विवाहों के अतीरिक्त स्वयंवर भी होता है। उसके दो भेद हैं एक वह की जिसमें केवल कन्या की रूचि ही प्रधान होती है जैसे इन्दुमति आदि, और दूसरा वह की जिसमें

पिता कोई प्रण करदे जैसे सीता और द्रोपदी का स्वयंवर

(१४) गृहस्थाश्रम संस्कार

गृहस्थाश्रम सब आश्रमों में श्रेष्ठ और प्रधान माना जाता है क्यों कि तीनों आश्रमों के मनुस्य उसकी आसा ही नहीं करते वरन् यहाँ तक है कि उसकी सहायता के बिना वह सब किसी प्रकार के भी अपने कार्य को निर्वाह नहीं कर सकते। अतएव यह आश्रम सर्व श्रेष्ठ माना जाता है। जिस प्रकार सब जंतू वायु के आश्रम से रहते हैं ऐसे ही अन्य सब आश्रयी भी गृहस्थाश्रम से अपना निर्वाह करते हैं। एक गृहस्थाश्रम ही शेष तीनों आश्रमी अर्थात (ब्रह्मचारी, वानप्रश्थ और शन्यासियों) के, अन्नादिक देकर चलाता है। इसलिए गृहस्थाश्रम ही सर्वश्रेष्ठ आश्रम है। अक्षय सुख की इच्छा करने वाले मनुष्य को उचित है कि उस गृहस्थाश्रम को, यत्न पुर्वक धारण करे क्यों कि दुर्बल इन्द्रिय मनुष्य धारण नहीं कर सकते। उसे इस लोक और परलोक दोनों में सुख मिलता है।

गृहस्थाश्रम जितने धर्म अथवा संसार संबंधी कार्य है उन सबका प्रधान कारण स्त्री ही है क्यों कि उसके बिना गृहस्थाश्रम हो ही नहीं सकता। अतएव गृहस्था को उचित है कि सब प्रयत्नों से स्त्री को संतुष्ट रक्खे। और स्त्री को भी उचित है कि पति ही को अपना परम देवता मानें) क्यों कि जबतक

दोनों में इस प्रकार का व्यवहार न होगा जबतक उस कुल का कल्याण नहीं हो सकता।

—- पंच देव पूजा -—

गृहस्थ को प्रतिदिन संध्यो पासन और पंच देव पूजा अवश्य करनी उचित है।

मातृ देवो भव पितृ देवो भव, आचार्य देवो भव, अर्थात माता पिता, आचार्य और अतिथि इन को देव मानों बस ये ही चार देवता हैं और पांचवा महादेव (सब का देव) परमेश्वर है। गृहस्थ को यह पंच देव पूजा अवश्य प्रतिदिन करनी उचित है इसके बिना गृहस्थ पतित हो जाता है।

(१५)-- वाणप्रस्थ संस्कार

एवं गृहाश्रमे स्थित्वा विधिवत्स्नात को द्विजः।
वने व सेत्तु नियतो यथा वद्विजितेन्द्रियः॥
गृहस्थेस्तु सदा पश्ये द्वलीपलितमात्मनः।
अपत्यस्य यदापत्यन्तरदारण्यं सभाश्रयेत्॥
सन्त्यज्य ग्राम्यमाहारं सर्वंचैव परिच्छदम्।
पुत्रेषु भार्यान्नि क्षिप्ये वनं गच्छेत्सहैव वा॥ मनु०॥

भावार्थ :— पूर्वोक्ति विधि से गृहस्थाश्रम को समाप्त करके वेद पाठी द्विज अपनी कर्मेंद्रिय और ज्ञनेंद्रिय तथा मन को अपने वस में करके बन में बसे। गृहस्थ जिस समय देखें की मेरे बाल श्वेत होगये खाल सिकुड़ने लगी और पुत्र तथा पुत्री को सन्तान होगये तब वानप्रस्थाश्रम ग्रहण करे। जब संन्तान को संन्तान हो तो उक्त अवस्था में वाणप्रस्थाश्रम ग्रहण करे। ग्राम में उत्पन्न हुए सब आहार और गृहस्थी की सामग्री को त्याग कर स्त्री को पुत्रों के आधीन करके अथवा संग लेकर बन को चला जाय।

शाक मूल फलाहारी स्वाधाय निरतः सदा।
अग्निहोत्र समायुक्तः मृन्यन्नैः कृतसत्क्रियः॥
दान्तौ मैत्री परः शान्तौ दाता ब्रह्म परायणः।
पंच यज्ञ रतोनित्यं वृक्ष मूल धराशयः॥

भावार्थः— बन में रहकर शाकमूल और फल का भोजन करे। अर्थात ग्राम्य अन्न न खाय, वेद नित्य पढ़े, अग्नि होत्र नित्य करे जिस वस्तुओं को मुनी खाते हैं उन्हीं को खावें इन्द्रियों को वश में रक्खे काम क्रोध आदि को त्याग दे, किसी से द्वेस न कर, अतिथियों को भिक्षा दे, इश्वर की उपाशना करे, नित्य पंच यज्ञ करे, वृक्ष के नीचे पृथ्वी पर सोवे उस आश्रम

में भी मनुने भिक्षा मांगने मना लिखा है "दाता नित्य मना दाता" अर्थात स्वयं नित्य दान करे परंतु दुसरे से दान न ले इस इस आशय से विचार ने से यह जान पड़ता है कि वानप्रस्थ के भोजनादि का प्रबन्ध उसके पुत्रादिकों को करना उचित हैं क्यों कि धृतराष्ट्रादिको वाणप्रस्थाश्रम के नियम से यह सिद्ध होता है कि उनका प्रबध पुत्रादि के आधीन ही था। वानप्रस्थ अपने सुखके लिए कोई भी यत्न न करे क्यों कि उस ही आश्रम के पश्चात सन्यासवस्था होती है अतएव इस ही आश्रम से त्याग का अभ्यास आरंभ होजाना चाहिए। वानप्रस्थाश्रम के पश्चात सन्यासाश्रम का विधान है। यद्यपि संयनस को संस्कारों में गिनने से सख्या बढ़ जाती है इस ही लिए बहुत पुस्तक प्रणेताओंने इस सन्यास को संस्कार नहीं माना इसको वाणप्रस्था संस्कार संगही वर्णन करना उचित है क्यों की वाणप्रस्था वस्था में त्याग का अभ्यास बढ़ते २ इतना होजाता है कि शरीर पर्य्यन्त का भी ध्यान नहीं रहता वहाँ फिर संस्कार किसका हे। और कोन करावे बस यह ही कारण है कि इसके सोलह संस्कारों में नहीं लिखा गया।

ब्रह्मचर्याश्रम समाप्त करके गृहस्थ हो कर वाणप्रस्थ हो या और वाणप्रस्थ होय कर संन्यासी हो। इस आश्रम में सब वस्तुओं का मोह परित्याग करके केवल परोपकारार्थ अपनी विद्या और बुद्धि

के अनुसार उपदेस करे और भोजन वस्त्र से संबन्ध रक्खे। इसके विशेष वर्णन की आवश्यकता नहीं हे।

(१३) अन्त्येष्टि संस्कार

यह सबसे अन्तिम संस्कार है। मनु ने इसके विषय में विशेष वर्णन किया है।

ऊनद्विवार्षिकं प्रेतं निदध्युर्बांधवाबहिः।
अलंकृत्यशुचौभूमा वस्थिसंचय नाहते॥
नास्यकार्योऽग्नि संस्कारो नास्यकार्योदकक्रिया।
अरण्येकाष्टवत्त्यक्त्वा क्षिपेयुस्त्व्यहमेवतु॥
नात्रि वर्षस्य कर्तव्या वान्धवैरुदक क्रिया।
जातदन्तस्य वा कुर्यान्नाग्निचापि कृते सति॥ मनु०॥

भावार्थ - जिस लड़के की मृत्यु दो वर्ष से कम अवस्था में हो उसका अग्नि संस्कार नहीं होता। बान्धव उसको वस्त्रादि पहना कर बाहर निकालें और काष्ट के समान जंगल में फेंक दें। यह मनु का वचन है किन्तु यागवल्क्य ने लिखा है कि 'उनद्विवर्षं निखनेन्नकुर्या दुदकन्ततः। दो वर्ष से कम आयु वाले मृतक को पृथ्वी में गाड़ दे, जलावे नहीं इत्यादि। हमारे विचार में काष्ठ के समान जंगल में फेंक देने से पृथ्वी में

गाड़ना अच्छा है। फिर मनु लिखते हैं कि तीन वर्ष के बिना उदक क्रिया न करे। इसी प्रकार सबकी अन्तिम क्रिया धर्म-शास्त्रों में लिखी है। सब मनुष्य उसी प्रकार से क्रिया करते भी हैं। अनेक लोग क्रिया करने में अन्य विधि भी रखते हैं।

नित्य नैमित्यिक कर्म

ॐ प्रभातेयः स्मरेनित्यं विष्णु विष्णुः चरद्वयम्।
आपदस्तस्य नश्यन्ति तमः सूर्योदये यथा॥

तत्र सन्ध्या शब्दार्थः

सन्ध्यायन्ति सन्ध्यायते वा परब्रह्मयस्यां सा सन्ध्या। तत्र रात्रि दिवयोः संधिवेलायामुभयो स्सन्ध्ययोः ब्राह्मणाः अवश्यं परमेश्वरस्येव स्तुति प्रार्थनोपासनाः कार्याः॥ तत्रादौ जलाच्छरीर शुद्धिः कर्तव्या आभ्यन्तरा रागद्वेषा सत्पादि त्यागेन अवश्यं शुद्धिर्भवतीतिनियमाः॥

भावार्थ—सम्यक् प्रकार से परब्रह्म परमात्मा का ध्यान करते हैं अथवा ध्यान किया जाय उसे सन्ध्या कहते हैं। तहाँ रात्रि-दिन अर्थात् सूर्योदयास्त दोनों सन्धि में अवश्य परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना करें तहाँ प्रथम जल से शुद्धि

इस मन्त्र से करे।

सन्ध्या की विधि तो बहुत है परन्तु विस्तार भय से नहीं लिखा गया है। पाठक महोदय "देवर्षि पितृ-तर्पण" में देखें।

इस मन्त्र के साथ दर्भ से मार्जन करें:—

ॐ अपवित्र पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपिवा।
यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं सवाह्याभ्यंतर शुचिः॥

फिर दर्भ सहित संकल्प करे—

ॐ अद्यैतस्य ब्राह्मणोह्नि द्वितीये परार्धे श्री स्वेत वाराह कल्पे जम्बूद्वीपे भरतखण्डे आर्यावर्तैक देशान्तरगते पुण्यक्षेत्रे कलियुगे कलिप्रथमचरणे ऽमुकसम्वत्सरे ऽमुकमासेऽमुकपक्षेऽमुकतिथावमुकवासरेऽमुकगोत्रोत्पन्नोऽमुकनामाहं प्रातः सन्ध्योपासन कर्म करिष्यैति संकल्पः॥

पश्चात् गायत्री का सप्त व्याहृतियों सहित तीन प्राणायाम करे। यथा:—

ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ महः ॐ जनः ॐ तपः ॐ सत्यम् ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो

योनः प्रचोदयात् । ॐ आपोज्योति रसोऽमृतं ॐ ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोऽम् ॥

पीछे सूर्य को अर्घ्य देवे —

एहि सूर्य सहस्रांशो तेजो राशे जगत्पते ।
अनुकम्पय मां भक्त्या ग्रहाणार्घ्यं दिवाकरः ॥

॥ इति प्रथम यज्ञः ॥

(१) ब्रह्मयज्ञ यानि गायत्री यज्ञ के पश्चात् (२) देवयज्ञ (हवन इत्यादि) (३) पितृ-यज्ञ (तर्पण इत्यादि) ४ वैश्वदेव बलियज्ञ और (५) अतिथि यज्ञ। इन पाँचों यज्ञों को करना ब्राह्मण का परम धर्म है। इन यज्ञों के करने से गृहस्थ के नित्यप्रति पाँच पाप जो कुण्डली (ऊखली) पेषणी (घटी) चुल्ली (चूल्हा) कुदकुम्भी (परिंडा) और मार्जनी (बुहारी) से होते हैं, वे सर्वथा नष्ट हो जाते हैं। इति पंच महायज्ञ कर्म

अथ षोड़शपूजा मन्त्रारम्भः यजुर्वेदात्

तत्रादौ आवाहन मन्त्र

ॐ सहस्रशीर्षापुरुषः सहस्राक्ष सहस्रपात् । स भूमि ᳫं सर्वतस्पृत्वात्यतिष्ठद्दशांगुलम् ॥ १ ॥

अथासनम्—

ॐ पुरुष एवेद ᳫं सर्वं यद्भूतं यच्चभाव्यम् । उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेना तिरोहति ॥ २ ॥

अथ पाद्यम्—

ॐ एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पुरुषः । पादोस्य विश्वाभूतानि त्रिपादस्या मृतन्दिवि ॥ ३ ॥

अथार्घ्यम्—

ॐ त्रिपादूर्ध्वऽनुदेत्पुरुषः पादोस्येहाभवत्पुनः । ततो विश्वंव्यक्रामत्सा सनान शनेऽअभि ॥ ४ ॥

अथाचमनम्—

ॐ ततो विराड जायत विराजोऽअधिपुरुषः । सजातोऽअत्यरिच्यतपश्चाद् भूमि मथो पुरः ॥ ५ ॥

अथ स्नानम्—

ॐ तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम् । पशूँस्ताँश्चक्रवायव्या नारण्याग्राम्याश्चये ॥ ६ ॥

अथ वस्त्रम्—

ॐ तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे । छन्दा
ꣳसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥ ७ ॥

अथ यज्ञोपवीतम्—

ॐ तस्मादश्वाऽजायन्तके चोभयादतः । गावोह जज्ञिरे
तस्मात्तस्माज्जाताऽअजावयः ॥ ८ ॥

अथ गन्धम्—

ॐ तं यज्ञम्बर्हिषिप्रोक्षं पुरुषंजातमग्रतः । तेन देवाऽअय-
जन्तसाद्ध्याऽऋषयश्चये ॥ ९ ॥

अथ पुष्पम्—

ॐ यत्पुरुषंव्यदधुः कति धाव्यकल्पयन् । मुखं किमस्या
सीत् किंबाहुः किमूरू पाराऽउच्यते ॥ १० ॥

अथ धूपं—

ॐ ब्राह्मणोस्य मुख मासीद्बाहु राजन्यः कृतः । उरू-
तदस्य यद्वैश्यः पदभ्यां ꣳ शूद्रोऽजायत् ॥ ११ ॥

अथ दीपम्—

ॐ चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत् । श्रोत्रा
द्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत् ॥ १२ ॥

अथ नैवेद्यम्—

ॐ नाभ्याऽआसीदन्तरिक्ष ꣳ शीर्ष्णोद्योः समवर्तत ।
पद्भ्यांभूमिर्दिशः श्रोत्रा त्तथा लोकाँ ३ ऽअकल्पयन् ॥

अथाचमनम्—

ॐ यत्पुरुषेणहविषा देवा यज्ञ मतन्वत । वसन्तोऽस्या-
सीदाज्यं ग्रीष्मऽइध्यः सरद्धविः ॥ १४ ॥

अथ ताम्बूलम्—

ॐ सप्तास्या सन्परिधयस्त्रिः सप्तसमिधः कृताः देवाय-
द्यन्तन्वानांऽवन्धं पुरुषं पशुम् ॥ १५ ॥

अथारतिम्—

ॐ यज्ञे न यज्ञमययन्तदेवास्तानिधर्माणि प्रथमान्यासन् ।
तेहना कम्महिमानः सचन्तयत्रपूर्वेसाध्याः सन्ति देवाः ॥

अथ प्रदक्षिणाम्—

ॐ वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्य वर्णं तमसः परस्तात् ।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यते यनाय ॥

अथ प्रार्थना—

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियोयोनः प्रचोदयात् ॥ १८ ॥

अथ नमस्कारम्—

ॐ नमो मित्रस्य वरुणस्य चक्षसे महोदेवाय तदृत ँ समवर्त्यत् । दूरे दृशे देव जाताय कतवे दिवस्पूताय प्रस ँ सनेति ॥ १९ ॥

अथ विसर्जनम्—

ॐ अवसृष्टा परायत सरण्ये ब्रह्मसः शिते । गच्छामि - त्रान्प्रपद्य स्वमामिषां कंचनोच्छिषः ॥ २० ॥ इति ॥

ईश विनय

स वै मनः कृष्णपदारविंदयोर्वचांसि वैकुण्ठ गुणानुवर्णनैः । करौ हरे मंदिर मार्जनादिषु श्रुतिं चकाराच्युत सत्कथोदये ॥ मुकुन्द लिंगालय दर्शनेदृशौ तद्भृत्यगात्रस्पर्शेंगसंगम् । घ्राणं च तत्पादसरोज सौरभे श्रीमत्तु लस्या रसनां तदर्पिते ॥ पादौ हरेः क्षेत्रपदानुसर्पणे शिरो हृषीकेश पदाभिवन्दने । कामं च दास्ये न तु काम्यकाम्यया यथोक्तम् श्लोकजना- श्रयाः रतिः ॥ २० ॥

(भागवते नवमस्कन्धे अध्याय ४)

अथ च

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः ।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखम् न परांगतिम् ॥ २३ ॥
तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ ।
ज्ञात्वा शास्त्र विधानोक्तं कर्मकर्तुमिहाहसि ॥ २४ ॥

(गीता अध्याय १६)

पाठेऽसमर्थः संपूर्णं ततोऽर्धं पाठमाचरेत् ।
तदा गोदानजं पुण्यं लभते नात्र संशयः ॥
त्रिभागं पठमानस्तु गंगास्नान फलं लभेत् ।
चतुर्थं जपमानस्तु सोमयागफलं लभेत् ॥

यथा भविष्ये—

मारकंडेय बलि व्यास हनुमांश्च विभिषणः ।
अश्वत्थामा परशुराम सप्तैते चिर जीविनः ॥

❀ इति शुभम् ❀

❀ प्रशंसा पत्रम् ❀

श्रीमता पंडितेन्द्रेण श्री गणेशराम शर्म्मणा संग्रहीतोयं प्रबन्धः प्रथक् प्रथक् प्रकरण प्रदर्शनेन दृष्टो मयासकृत्। सुष्ठुतर प्रशंसार्हश्चेति। अनेन महोपकार स्यात्। एतदर्थ मतीव धन्यवादं करोमि। संग्रहणे कृतः श्रमः सोप्यत्त त्तमोस्ति। शम्।

निवेदक—

कविराजो भवानीदत्त शर्मा वैद्यशास्त्री वैद्यराज

अध्यक्ष— श्री धन्वन्तरि औषधालय, नारनौल।

—०—

श्रीमता गणेशराम शर्मणः कृतः परिश्रमः अत्युत्तमः पुस्तकमिदम् भावेचदृष्ट्वा संतुष्टतरः संजातोऽहम्— इदृशा एव पुरुषाः समुन्नतिपथं प्राप्नुवन्ति, देशोपकारंच कुर्वंति योग्यतमः विद्वद्वर्यः एतर्थ धन्यवादं करोमि।

भवदीय—

बाबूलाल शर्मा वैद्यराज, नारनौल।

—०—

श्रीमता गणेशराम शर्मणायः परिश्रमोकृतः अत्युत्तम ब्राह्मणवंशावतं सोयंयोग्यतम विद्वद्वर्यश्च देशकाल विच्चाथ प्रशंसापत्रंचास्मैदत्तः। अस्मिन् भावे सम्मतिदात्र प्रभूदत्त शर्मणः वैद्याचर्य शेखावालान्तर्गत कूँकणू ग्रामस्य लक्ष्मीनाथ औषधालयाध्यक्षस्य ॥ नन्दीग्राम निवासिनः सम्मनुत्तेवं स्वामी दामोदरदत्त शर्मा (उदरामसर ग्राम निवासिनः)।

—•—

श्रीमद्भिः गणेशराम महोदयेन संमलं कृतम् पुस्तकमिदम् परिश्रमस्तु सर्वथा सराहनीय यौग्यैव — परंच मदीया संमतिरित्पत्र इयम् पंडित महोदयेन याच स्वकीया रचनां स्वयमेव निर्मिता सा कस्यचित् विद्वज्जन सकासात् — अथवा विद्वज्जन सामाजे अवश्यमेव संशोधनार्हा — तथाच — ग्रन्थस्य शैलीम् दृष्ट्वा संतुष्टतरः संजातोऽहम्। पुस्तकावलोकन संतुष्टचेताः।

रामकुमारो वैद्यवर

लाला गमरावसिंह संतलालयोः

धर्मार्थायुर्वेदौषधालयस्य उपचिकित्सकः नारनौलीयः

श्रीयुत् दाधीच काव्यतीर्थ पं० धरणीधर शास्त्रिणाविरचित
वैदिक यन्त्रालय, अजमेर निवासी

—: धन्यवाद पत्रम् :—

श्रीयुत् गणेशरामः प्रज्ञाशीलोऽपियोऽस्तिनिर्भ्रमः ।
नित्य मुपासित रामः संसारेतत् महागुणग्रामः ॥

श्लोकार्थ— श्रीमान् पं० गणेशरामजी महाराज बुद्धिमान्, निर्भय, भ्रमरहित, शुद्ध आचरण वाले हैं। नित्यप्रति रामचन्द्रजी की उपासना करने वाले तथा श्री गोविंददेवजी की उपासना करने वाले संसार में गुणों के ग्राम गुणनिधि हैं।

द्वितीयम्

यः श्रोतियः श्रीश्वरदाससूत– विद्वद्धुरीणोजन माननीयः
कित्र्यांपरो वैद्यवरोस्ति शास्त्री–गणेशरामोजयतात्सदासः ॥

श्लोकार्थ— वेदों का पाठ करने वाले श्री ईश्वरदासजी के पुत्र विद्वानों में अग्रगण्य सकल जग में सर्व मनुष्यों के माननीय तथा पूजनीय प्रख्यात हैं। ऐसी कीर्ति वाले वैद्यराज पण्डित गणेशरामजी शास्त्रीजी महाराज की सदा जय हो।

श्रीयुत् दाधीच पं० सूर्यनारायण शास्त्रीणा विरचित—
हितैषिणी संस्कृत पाठशाला, अजमेर।

शान्तो नितान्तं गुरु शिष्यताधृत् - सुधाकरश्चोषधिनाथएषः।
पतिर्द्विजानां जनताभिनम्यो बिभूयति श्रेष्ट गणेशरामः ॥

श्रीमान् गणेशरामजी शर्मा शान्त स्वभाव के हैं, अनेक शिष्यों के गुरु— गुरु-शिष्यता को धारण करने वाले, चन्द्र के समान निर्मल, उज्ज्वल हैं। वैद्यराज होने से औषधपति हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों के स्वामी (मालिक) जिनको सकल जनता नमस्कार करती है— सर्वश्रेष्ठ गणेशरामजी शास्त्री सकलान्धकार से रहित हैं।

—: धन्यवाद :—

हम आपको कोटिशः धन्यवाद देते हैं कि आपने जाति सुधार में तत्पर होकर ग्रन्थ-रचना की है। प्रस्तुत ग्रन्थ का कलेवर बहुत ही मान्य और ठोस है।

पं० कन्हैयालाल शर्मा	ज्योतिषाचार्य पं० दौलतराम शर्मा
हितैषिणी संस्कृत पाठशाला,	कायस्थ मोहला, इंद्रपोल,
अजमेर।	अजमेर।

पं० कल्याणदत्त शर्मा पं० बालाप्रसाद तिवाड़ी

अजमेर, सं० सो० कं० सिखवाल ब्राह्मण

क्लर्क रेल्वे टिकिट प्रिन्टिंग, अजमेर।

श्रीमता विद्वद् प्रवरेण पाषण्ड पण्ड ध्वान्त ध्वंसन प्रखरमति मता पं० गणेशराम शर्मणा स्वजात्युकार करणाय भ्रमान्धानामज्ञान हरणाय अनेक शास्त्रोक्ताभेद्यवर्म मण्डितं "परशुराम वंश-दर्शनं" यद् पुस्तकं विधीतम् अहमेतद् पुस्तकं विलोक्य अतीव हर्षितोऽस्मि, ज्ञात्युपकर्तायं महोदय अस्मिन-वनितले धन्योऽस्ति मनसाहं नितरां विमृश्य ब्रवीमि यत् परशु वंशावतंसादि गौड़ेर्सह भोजनादि व्यवहारे कापि दोषापत्तिर्नास्ति।

विद्वज्जनेभ्यरित्यलम्

विद्वज्जनंपदाम्भोज किंकरः

रामपाल दाधीच

कोसाण (स्टेट जोधपुर)

अथ ग्रन्थकर्ता की वंशावली

दोहा– नमस्कार करि विष्णु को, भारथि को शिर नाय।
परम्परा निज वंश की, कहै गणेश बनाय॥

चौपाई— सम्वत श्रुति श्रुति गुणनिधि आयो।
जमारामगढ़ तज मतो उपायो॥
आय वास दूंकोर बसाये।
जिनके यह शुभ नाम कहाये॥ १॥
विप्रवर्य ऋषि परम पिछानो।
नाम कुशाजदासजी जानो॥
गोविन्दराम तासु सुत ऐसे।
महा तपस्वी पण्डित जैसे॥ २॥
ता सुत विष्णुराम विज्ञानी।
अति विद्याबल के अभिमानी॥
पूरणदास तासु सुत धीरा।
सम दम धैर्यवन्त गंभीरा॥ ३॥

दोहा– अरु उनके सुत यह भये, मंजुल टीकमदास।
रक्षक थे निज वंश के, दायावन्त हुलास॥

सज्जन थे सब प्राणि के, करते थे कल्यान ।
विष्णुभक्ति के भक्त थे, समरथ अति बलवान ॥

चौपाई— कानडदास तासु सुन ज्ञानी ।
जिनकी अगम मनोहर बानी ॥
ताके सुत भये जीवणदासा ।
जिनकी मोक्ष दायिनी भाषा ॥
तिनके सुत तुलसी भूदेवा ।
भारत से करवाई सेवा ॥
तासुत हीरादास बखानो ।
मनसाराम तासु सुत जानो ॥
गोविन्दराम तासु सुत पंडित ।
जहँ तहँ कियो जैनमत खंडित ॥
नन्दराम पंडित सुत ताके ।
गिरिधरदास पुत्र भये जाके ॥

दोहा— जाके ईश्वरदासजी, परशु-गौड़ द्विजाति ।
मैं गणेश ताके सरन, पुत्र भयो विख्याति ॥
सो निज वंश प्रकाश करि, सज्जन दियो दिखाय ।
विनती यही सब ज्ञाति से, इनकी करिये सहाय ॥

सं० ६१० में हस्तिनापुर से चिनाकखेरी आये, और सं० ११११ में चिनाकखेरी से जमारामगढ़ आये और सं० १६०३ में जमारामगढ़ से दूंकोर में आये ।

मिलने का पता—
पं० गणेशराम गौड़
गिरानी सोनारों की गवाड़,
बीकानेर